chapter. 4

चतुर्थ अध्याय :

गुजरात में जैन संप्रदाय एवं उसका साहित्य

* जैन सम्प्रदाय की साहित्यिक पृष्ठभूमि
* १७ वीं तथा १८ वीं सदी के जैन गूर्जर कवि
* महाराव लखपति सिंह और ब्रजभाषा पाठशाला
* गुजरात के गूर्जर जैन कवियों का साहित्य प्रदान

चतुर्थ अध्याय :

गुजरात में जैन संप्रदाय एवं उसका साहित्य

जैन सम्प्रदाय की साहित्यिक पृष्ठभूमि :

गुजरात जैन धर्म, संस्कृति का एवं साहित्य का प्रमुख केन्द्र रहा है। जैन धर्म के चिरस्थायी प्रभाव के फलस्वरूप ही जैन साधुओं, विद्वानों एवं गृहस्थ कवियों ने इस प्रान्त को सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अमूल्य भेंटों से अलंकृत किया। जैन धर्म का अस्तित्व प्राचीन काल से मिलता है। इस धर्म के 24 तीर्थंकर हुए हैं। एक भ्रान्त धारणा यह भी प्रचलित थी कि जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान महावीर थे - अर्थात् जैन धर्म का केवल 2500 वर्ष से ही अस्तित्व प्राप्त है। अब यह धारण निमूल सिद्ध हो चुकी है। जैन धर्म आदि तीर्थंकर ऋषभदेव द्वारा प्रवर्तित धर्म है। आज इस मत का समर्थन अनेक रूपों में हो रहा है।[1]

प्राचीनकाल में जैन धर्म अस्तित्व में था, यह वैदिक धर्म के कुछ प्राचीन ग्रंथों से सिद्ध होता है। रामायण और महाभारत में जैन धर्म का उल्लेख हुआ है। जैन धर्मानुसार बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुब्रत स्वामी के समय में रामचन्द्रजी का होना सिद्ध है।[2]

जैन धर्म की प्राचीनता डॉ. राधाकृष्ण ने भी स्वीकार की है। उन्होंने लिखा है - ''भागवत पुराण से स्पष्ट है कि जैन धर्म के संस्थापक ऋषभदेव की पूजा ईसा की प्रथम शताब्दी में होती थी।'' इसके प्रमाण भी उपलब्ध हैं । निःसंदेह जैन धर्म वर्धमान अथवा पार्श्वनाथ से पूर्व प्रचलित था। यजुर्वेद में ऋषभ अजित और अरिष्टनेमि का उल्लेख है।[3]

प्रो. जयचन्द विद्यालंकार के मतानुसार ''जैनों की मान्यता है कि उनका धर्म बहुत प्राचीन है और भगवान महावीर के पहले 23 तीर्थंकर हुए हैं।'' इस मान्यता में तथ्य है। ये तीर्थंकर अनैतिहासिक व्यक्ति नहीं थे। भारत का प्राचीन इतिहास उतना ही जैन है जितना वैदिक।[4] सत्यकेतु विद्यालंकर के मातनुसार वर्धमान महावीर जैन धर्म का अंतीम तीर्थंकर था।[5] लेकिन, तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक लोग जैन धर्म का संस्थापक मानते हैं और अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर को संशोधक। पार्श्वनाथ, महावीर के 200 वर्ष पूर्व हुए थे। महावीर का आविर्भाव गौतम बुद्ध के समय में हुआ था। वे गौतम बुद्ध के समकालीन थे।[6] ईसा मसीह से पाँच शताब्दी पूर्व महावीर स्वामी का प्रादुर्भाव हुआ था। भगवान महावीर ने जाति-पाँति एवं तत्कालीन समाज में प्रचलित क्रिया कलापों कर्मकाण्डों को निरर्थक सिद्ध किया और अहिंसा को प्राधान्य देकर सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य पर अधिक बल दिया। जैन धर्म का मूल सिद्धांत ही अहिंसा है।

बहुत पहले से गुजरात से जैनों का निकटतम संबंध रहा है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव, के प्रधान गणधर पुंडरीक ने शत्रुंजय पर्वत (गुजरात) से निर्वाण लाभ लिया था।[7] जैन धर्म के 21वें तीर्थंकर नेमिनाथ (कृष्ण के पैतृक भाई) का तो यह प्रधान विहार क्षेत्र था। जूनागढ़ के महाराजा उग्रसेन की राजकुमारी राजुल से नेमिनाथ के विवाह की तैयारी करने, भौतिक देह और संसारी भोगों से विरक्त होकर गिरनार पर्वत पर समाधि लेने तथा तीर्थंकर मुनि सुब्रत के आश्रम का भृगुकच्छ में होने के उल्लेख मिलते हैं।[8] गुप्त राजाओं के बाद गुजरात पर वलभी के मैत्रकों ने सन् 470 से 789 ई. तक शासन किया **''दशकुमार चरित्''** और **''कथा सरिता सागर''** में वलभी का समुद्र नवार के रूप में उल्लेख मिलता है। 5वीं शताब्दी में बीसवें तीर्थंकर सुब्रत का शकुनिक विहार भड़ौच में था। 5वीं शताब्दी में ही जैन-ग्रंथों को एकत्रित करने के लिए नागार्जुन द्वारा वलभी में एक सभा हुई थी। जैन साधुओं की दूसरी सभा देवर्द्धिगणि द्वारा वलभी में हूई थी जिसमें जैन धार्मिक ग्रंथों का लेखन हुआ और सम्पूर्ण घटना को ''पुस्तकारोहण'' की संज्ञा दी गई। वलभी के शासन काल में नागार्जुन, मल्लवदिन और देवर्द्धिगणि विशिष्ट जैन विद्वान थे। ईसा सन् 5वीं शताब्दी में वलभी के राजा शिलादित्य और वृद्धपुर (बड़नगर) के राजा ध्रुवसेन के जैन धर्मावलम्बी होने का उल्लेख भी मिलता है। 589 ई. के कुछ समय पूर्व जैन साधु भद्रबाहु द्वारा रचित 'वसुदेव-हिण्डी' में अपभ्रंश के प्राचीन रूप मिलते हैं। 5वीं से 10वीं शताब्दी के बीच 'तरंगवती' (प्राकृत प्रेमकाव्य) विमल

का 'पउमचरिअम्' (जैन महाराष्ट्र प्राकृत) हरिभद्रसेन कृत 'समराइच्चकहा' और धूर्ताख्यान (महाराष्ट्र प्राकृत) उद्योतनसूरि कृत 'कुवलयमाला' (झालोर में 779 ई. में रचित चम्पू काव्य), जिनसेन कृत 'हरिवंश पुराण' (इ.स. 783 में रचित), सिद्धर्षि कृत 'उपमिति-भव' 'प्रपज्य-कथा,' (906 ई. में रचित) शिलादित्य कृत प्राकृत ग्रंथ ''चौपान् महापुरुष चरिअम्'' विजय सिंह का 'सुन्दरी कथा,' महेश्वर सूरि का 'कालकाचार्य कथानक,' तथा हरिषेण का 'बृहत्कथा कोश' आदि महत्वपूर्ण जैन ग्रंथों की रचना की गई ।

धक्कड़ वंश के दिगम्बर जैन धनणल ने हेमचन्द्र से लगभग 200 वर्ष पूर्व 22 संधियों में 'भविस्सत कहा' अथवा 'पंचमी कहा' की रचना की जो अब तक प्राप्त अपभ्रंश की सर्वोत्तम लोक-वार्ता है। लगभग दसवीं शताब्दी में चन्द्रमुनि ने 53 संधियों में कथाकोश की रचना की । राजा भोज द्वारा प्रेरित होकर 'तिलक मंजरी' की रचना करने वाले धनपाल ने 'पाइयलच्छीमाला' नामक प्राकृत कोश की भी रचना की। ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास एक श्वेतांबर जैन महेश्वरसूरि ने 35 दोहों की 'संजम मंजरी' की रचना की ।

वनराज चावड़ा ने सन् 745 ई. में पाटण की स्थापना की। पाटण की वास्तविक उन्नति चालुक्य राजाओं के समय से हुई। हेमचन्द्र का जन्म 1089 ई. में हुआ था और वे सन् 1173 तक जीवित रहे। हेमचन्द्र से कुछ समय पहले अभय देव सूरि ने पार्श्वनाथ की प्रशंसा में 33 गाथाओं वाले 'जयति हुअण' नामक ग्रंथ की रचना की। साधारण (कवि) ने स. 1123 में 'विलासवइं कहा' की रचना की हेमचन्द्र के गुरू देवचन्द्र देव ने सं. 1160 में हजार पदों का अपभ्रंश काव्य 'शांति नाथ चरित्र' तथा 'सुलसाख्यान' काव्य की रचना की हेमचन्द्र के पूर्व की रचनाओं में 'पडसिरिचरिउ' (धाहिल कृत), जिनदत्तसूरि कृत तीन रचाएँ, पल्ह कृत 'पट्टावली' आदि हैं। हेमचन्द्राचार्य के समकालीन कवियों तथा रचनाओं में वादिदेवसूरि कृत 'गुरूस्तवन' तथा लक्ष्मणगणी कृत 'सुपासनाह चरित्र' (प्राकृत भाषा में) आदि है।

जैन आचार्य हेमचन्द्र गुजरात के सर्वश्रेष्ठ एवं महान् पण्डित माने जाते हैं। उन्हें 'उपभ्रंश का पाणिनी' भी कहा गया है। उन्होंने 'अनेकार्थ संग्रह' 'अभिधान चिन्तामणि' 'छन्दानुशासन', 'काव्यानुशासन' 'निघण्टुशेष' (आयुर्वेद ग्रंथ) योग शास्त्र (योग सम्बन्धी ''त्रिषष्टि-शालाका-पुरूषचरित'' नामक ग्रंथों की रचना की। आचार्य हेमचन्द्र का वास्तविक

नाम चांगदेव था। वे धन्धूका के मोढ़ वणिक थे। इस समय गुजरात का प्रसिद्ध सम्राट सिद्धराज जयसिंह (सन् 1049 से 1143 ई.) का शासन था जिसने 50 वर्ष तक राज किया। संवत् 1161 में वे सिद्धाराज के सम्पर्क में आए। मालवा के राजा भोज के साथ प्रतिद्वंद्विता के कारण गुजरात में विद्वानों का आश्रयदाता बनकर राजा सिद्धराज जयसिंह ने हेमचन्द्राचार्य को सिद्धहेम लिखने के लिए प्रेरित किया। सिद्धराज ने उसकी प्रतिलिपियाँ करा भारत के विभिन्न भागों से भेजी उसका परवर्ती कुमारपाल (1146- 1173इ) भी प्रसिद्ध शासक था। इन दोनों राजाओं के शासन काल में जैन धर्म की बहुत उन्नति हुई।

हेमचन्द्र के अनेक शिष्य थे। जिनमें से रामचन्द्र, गुणचन्द्र, महेन्द्रसूरि, वर्धमान गणि, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, यशस्यन्द्र, तथा बालचन्द्र प्रमुख हैं। उस काल में हेमचन्द्र का पूर्ण प्रभाव था।

हेमचन्द्र के समकालीन कवि हरिभद्रसूरि ने 'नेमिनाहचरिउ,' 'षट्कर्म प्रवेश' की रचना की। 13 वीं तथा 14 वीं शताब्दी में जय मंगल सूरि ने 'महावीर जन्माभिषेक' की और जिनप्रभसूरि ने अनेक छोटे ग्रंथों की रचना की। उनके शिष्यों में से एक ने 'नर्मदासूरि कथा' तथा 'गौतम स्वामी चरित्र' की रचना की। मेरूतुंग ने सं.1361 में 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' की रचना की। वाघेला शासकों के दो प्रमुख प्रसिद्ध मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल थे जो महान प्रशासक, कलाप्रेमी, अच्छे विद्वान थे। अतः शिक्षा राजनीति और युद्धकला में भी जैनों ने अच्छी प्रगति कर ली थी।

तेरहवीं शती में वनराज चावड़ा सोलंकी राजा शिलादित्य और वस्तुपाल तथा तेजपाल जैसे मंत्रियों ने जैनधर्म और साहित्य को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया । जैन धर्म का यह उत्कर्ष काल था।[9] इस समय जैन धर्म को प्राप्त राजकीय संरक्षण से गुजरात में देलवाडा, शत्रुंजय, गिरनार, पाटन, सिद्धपुर, वड़नगर और मोढ़ेरा में कलात्मकता से परिपूर्ण जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ।

13वीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमण से पहले गुजरात के पुस्तकालायों में जैन धर्म के मूल्यवान ग्रंथ थे। सन् 1297 में उलाउद्दीन खिलजी ने उसे परास्त कर दिया। विदेशी आक्रमणकारियों ने लूट-खसोट, मंदिरों को तोड़ना शुरू कर दिया। जैन साधुओं ने अपने धार्मिक ग्रंथ-भंडारों को भू-गर्भ में छुपा दिया। अब समाजिक और धार्मिक उत्सवों के

बीच साहित्य-सृजन होने लगा। जिन राजपूतों ने बड़ी वीरता से मुसलमानों का सामना किया उनका यशगान किया गया। जैन साधुओं ने अपने रासो और प्रबन्धों में मनोरंजन वर्णन और धार्मिक शिक्षाओं-दोनों का सम्मिश्रण करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार का साहित्य लगभग 300 वर्ष तक चलता रहा।

मुस्लिम आक्रमणों ने 'अनहिलवाण' गुजरात को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात विजय (सं. 1353) के बाद 100 वर्ष तक दिल्ली सुल्तानों ने शासन किया। दिल्ली के सुल्तानों का शासन कमजोर होने पर सन् 1411 ई. के बाद गुजरात का सूबेदार जफरखाँ स्वयं सुल्तान बन बैठा। इन मुस्लिम शासकों ने चौदहवीं शती के अंत तक मंदिरों को तोड़कर गुजरात की भूमि पर अनेकों मस्ज़िद खड़ी की। खंभात की जामा मस्ज़िद (सन् 1325), ईदगाह (सन् 1361) उस समय की मस्ज़िदें हैं।

डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त के अनुसार अब तक ज्ञान एवं उपलब्ध रासो काव्यों में भरतेश्वर बाहुबलि रास हिन्दी का प्राचीनतम काव्य है।[10]

रासो साहित्य के अन्तर्गत भरतेश्वर बाहुबलि रास (सन् 1184 ई) 'पंचपंडवरास' (सन् 1410) बुद्धिरास, 'रेवन्तगिरि' रासु (सन् 1231 ई में विजयसेन सूरि द्वारा रचित) अम्बदेव सूरि कृत 'समरा रासु' (सन् 1315 ई) 'जम्बूस्वामी रास' (सन् 1209 ई) 'पेथड रास' 'कछूली रास' (सन् 1306 ई) 'चन्दनबाला रास' (सन् 1200 ई) 'जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेक रास' (सन् 1313 ई) आदि प्रमुख रासो काव्य रचे गए ।

रासो काव्य की भाँति फागु काव्य की भी रचना हुई। जिनपथसूरि कृत 'रिरिथुलि भट्टफाग' (लगभग सं 1933 में), नेमिनाथ फागु (सं.1349 के आसपास) अज्ञात कवि द्वारा रचित भट्टफाग 'जम्बूस्वामी फाग', जिनचन्द्रसूरि फाग (सं. 1390 में रचित), थूलिभद्द फाग (सं.1409 में हलराज द्वारा), 'जिराउला पार्श्वनाथ फाग', 'सुरंगाभिधाननेमि फाग', 'नेमिश्वर चरित फाग', 'देवरत्नसूरि फाग' तथा 'हेमन्तसूरि फाग' आदि अनेक फागु हैं। इनमें से कुछ अप्रकाशित हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी से पहले हीरानन्द सूरि ने एक रचना 'विद्याविलास पहाडो' (सं. 1485) रचा ।

गुजरात में जैन धर्म के साहित्य का भंडार प्राचीन समय से ही समृद्ध रहा है। जैन कवियों ने अहिंसा, वीतराग और दयापूर्ण जीवनयापन रीति, गुरूभक्ति एवं जीवनोपदेश के

कारण नीति, सदाचार, ज्ञान तथा भक्ति एवं शांत रासपूर्ण साहित्य का विपुल सर्जन किया। हेमचन्द्राचार्य से लेकर नरसिंह मेहता के सर्जन काल तक हिन्दी में रासो, चउपई, फागु एवं कथादि काव्यों में शालिभद्र सूरि, हरिप्रभ सूरि, विनयचन्द्र सूरि, राजशेखर सूरि, जयशेखर सूरि मणिकचन्द्र आदि प्रधान है।

15वीं शताब्दी के जैन साहित्य भण्डार को समृद्ध करने में सोमसुन्दरगिरि और उनके शिष्यों का बहुत योगदान रहा। 'शालिभद्ररास' और ''गौतम पृच्छा'' (साधुहंस द्वारा रचित), ''चिहुंगति'' (वस्तिगत द्वारा), 'जम्बुस्वामी विवाहलो', 'कलिकालरास', 'मुनिपतिचरित्र' आदि जैन काव्य इस शताब्दी में मिलते हैं।

नरसिंह महेता के समकालीन जैन कवि एवं श्रावक देपाल गुजरात में विचरण करते तथा काव्य-रचना करते थे। उन्होंने जावड़-भावड रास, 'रोहणीया चोरनो रास' तथा कुछ अन्य ग्रंथों की रचना की। इस शताब्दी में 'सुदर्शन श्रेष्टि रास' (संघविमल), 'नलदवंदती रास'(ऋषिवर्धन) जो नल-दमयंती की कथा पर आधारित हैं, ''धन्ना रास'' (मतिशेखर) इसी प्रकार के अन्य रास और विवाहलो आदि की भी रचना हुई। लोक वार्ताओं में, विशेषतः विक्रम और उनके सिंहासन की रचना हुई।

15 वीं शताब्दी से जैन भट्टारक कवियों की भी रचनाएँ प्राप्त होती हैं। 15वीं शती के ऐसे गुर्जर भट्टारकों में भट्टारक सकल कीर्ति और ब्रह्मजिनदास उल्लेखनीय हैं। ये संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। फिर भी इन्होंने लोकभाषा के माध्यम से राजस्थान और गुजरात में जैन-साहित्य और संस्कृति के निर्माण में अपूर्व योग दिया। ये अणहिलपुर पट्टण के रहने वाले थे।[11] इसके शिष्य ब्रह्म जिनदास पाटण निवासी हूंबड़ जाति के श्रावक थे।[12] इनकी 60 से भी अधिक रचनाएँ हिन्दी में मिलती हैं जिनमें 'रामसीताराम', 'यशोधररास', 'भविष्यदत्तरास', 'परमहंसरास', 'हरिवंश पुराण', 'आदिनाथ पुराण' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

अकबर की गुजरात विजय (सन् 1572 ई.) से सम्पूर्ण गुजरात केन्द्रीय शासन के अधीन हो गया।[13] अकबर धर्म के प्रति काफी सहिष्णु था। सन् 1582 में सम्राट अकबर के आमंत्रण पर लाहौर में अकबर को प्रतिबोध देने गये जैनाचार्य हीरविजय सूरि, जिनचन्द्र सूरि, कनकसोम उपाध्याय, भानुचन्द्र गुजरात से ही आगरा गये थे।

गुजरात में जैन धर्म के दोनों सम्प्रदाय दिगम्बर और श्वेताम्बर को साथ-साथ फलने फूलने का अवसर मिला। श्वेताम्बरों का प्रधान केन्द्र रहने के साथ-साथ दिगम्बर भट्टारकों की भी नवसारी, भड़ौच, जंबूसर, नागौर, सूरत, बारडोली, इडर, धोधा आदि अनेक स्थानों पर गद्दियाँ स्थापित हुई। सौराष्ट्र में गिरनार और शत्रुंजय की यात्रा भी ये भट्टारक जैन साधु करते थे। भट्टारक संतो ने 8वीं शतीं से ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का स्वप्न देखना प्रारंभ कर दिया था। 16वीं शती में रचना करने वाले गुजरात के हिन्दी कवि विपुल संख्या में हैं परंतु इनकी अधिकांश रचनाएँ अज्ञात है या जैन भंडारों में दबी है।

17वीं एवं 18वीं सदी के जैन गूर्जर कवि :

इस शती के प्रमुख कवियों में आचार्य सोमकीर्ति, भट्टारक, सुमति सागर, चन्द्रकीर्ति, विनय समुद्र, बीरचन्द्र, आनन्दवर्धन सूरि, कनकसोम, कुशललाभ और साधुकीर्ति हैं।

नयन सुंदर :

नयन सुंदर का समय सं. 1562-1613 के मध्य का गृहित किया जाता है। अतः साक्ष्यों के आधार पर इनके गुरू पगच्छीय मानुमेरुगणि थे।[15] इनके द्वारा गुजराती भाषा में विपुल साहित्य की रचना हुई है। इनके द्वारा लिखी गई हिन्दी की कोई स्वतंत्र कृति नहीं मिलती लेकिन इन्होंने गुजराती भाषा में प्रणीत अपनी कृतियों में संस्कृत प्राकृत, हिन्दी तथा उर्दू के उदाहरण प्रचुर मात्रा में दिये हैं। कुछ अंश तो पूरे के पूरे हिन्दी गुजराती मिश्रित हैं।

कुण बैरी कुण बल्लहो, कवण अनेरो आपं,
भव अनंत ममता हुआं, नित्य नवा मा बाप॥

दुनिया में यारा बिगर, जे जीवणा सवि फोक,
कह्या न जावे हर किसे, आपणे दिल का सोक॥[16]

नयन सुंदर के कुछ स्तवनादि भी गुजराती मिश्रित हिन्दी में प्राप्त हैं, जिनमें ''संखेश्वर पार्श्व स्तवन'' 132 गाथा का तथा शांतिनाथ स्तवन विशेष उल्लेखनीय है।[17] ये बहुश्रुतु एवं विविध भाषाओं के जानकार थे। जिनविजयजी के पास ''नल दमयंतीरास'' की एक ऐसी प्रति है जिसमें प्राचीन कवियों का सुभाषित रूप में संग्रह किया गया है। इनमें इन के शुभाषित और कहावतें बड़ी सरल रूप से आये हैं। कवि की भावाभिव्यक्ति में हिन्दी का प्रभाव स्पष्ट

लक्षित है-

''दुनिया में यारा विगर, जे जीवणा सवि फोक,
कह्या न जावे हर किसे, आपणे दिल का शोक॥''[18]

शुभचन्द्र भट्टारक (सं. 1573-1613) :

शुभचन्द्र भट्टारक पदमनन्दि की परम्परा में भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। उनकी गुरू परंपरा इस प्रकार स्वीकृत है-

पद्मनन्दि → सकलकीर्ति → भुवनकीर्ति → ज्ञानभूषण → विषयकीर्ति → शंभुचंद्र[19]

इनके जन्म, बाल्यकाल, गृहस्थ जीवन, अध्ययन आदि के संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। उन्होंने सं. 1573 में आचार्य अमृतचन्द्र के समयसार कलशों पर ''अध्यात्मतरंगिणी'' नाम की टीका लिखी और सं. 1613 में वर्णी क्षेमचन्द्र की प्रार्थना से ''स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा'' की संस्कृत टीका रची। अतः रचनाकाल वि.सं. 1573 से 1613 सिद्ध है। संभवतः भट्टारक पद पर रहने का भी यही समय है। श्री वी. पी. जोहारपुर के मतानुसार ये 1573 में भट्टारक बने और संवत् 1613 तक इस पद पर बने रहे।[20]

शुभचन्द्र के भट्टारक बनने के पूर्व भट्टारक सकलकीर्ति एवं उनके पट्ट, शिष्य-प्रशिष्य भुवनकीर्ति, ज्ञानभूषण एवं विजयकीर्ति ने अपनी विद्वता, जनसेवा एवं सांस्कृतिक चेतना द्वारा वातावरण इतना सरल और अनुकूल बना दिया था कि इन संतों के लिए जैन समाज ही नहीं जैनेतर समाज में भी अगाध श्रद्धा निर्मित हुई।

शुभचन्द्र भट्टारक बलात्कार गण की ईडर शाखा के ये भट्टारक थे। अपने 40 वर्ष के भट्टारक पद का सदुपयोग इन्होंने राजस्थान, पंजाब, गुजरात एवं उत्तर प्रदेश में साहित्य का उत्साहपूर्ण वातावरण निर्मित करने में किया।

भट्टारक अपने समय के प्रख्यात एवं गणमान्य विद्वान थे। संस्कृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। उन्हें ''त्रिविद्यिविद्याधर'' और 'षट्भाषा कवि चक्रवर्ती' की पदवियाँ मिली हुई थी।[21]

इनके अन्य संस्कृत ग्रंथों में ''चंदना चरित'' बांगड़ प्रांत में निबद्ध किया और ''कीर्तिकेयानुप्रेक्षा टीका'' की रचना सी बागड़ के सागवाड़ा नगर में हुई। इसी तरह

सं. 1608 में ''पाण्डव पुराण'' को हिसार (पंजाब) में संपूर्ण किया।

संस्कृत में इन्होंने विपुल साहित्य का सर्जन किया है। पाण्डव पुराण की प्रशस्ति में उनके द्वारा लिखे गये 15 ग्रंथों का उल्लेख है। डॉ. कस्तुरचंद कासलीवाल ने इनके 40 ग्रंथों का उल्लेख किया है। इनकी हिन्दी रचना इस प्रकार है – महावीर छंद, विजयकीर्ति छंद, गुरूछंद, नेमिनाथ छंद, चतुर्विशति स्तुति, क्षेत्रपालगीत, अष्टाहिनका गीत, तत्वसार दोहा तथा स्फुट पद। इन रचनाओं में अधिकांश तो लधु स्तवन मात्र है, जो श्री दिगम्बर जैन मन्दिर बधीचन्दजी, जयपुर तथा पटौंदी दिगम्बर जैन मंदिर, जयपुर के संग्रहों में सुरक्षित है। इनकी भाषा पर गुजराती का विशेष प्रभाव है।

इनकी 'तत्वसार दोहा' कृति सविशेष उल्लेखनीय है। इसकी एक प्रति ढोलियान जैन मंदिर जयपुर में सुरक्षित है। इसके अंगर्गत 91 दोहे और छंद समाविष्ट हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

कर्म कलंक विकारने रे, निः शेष होय विनाश
मोक्ष तत्व श्री जिन कही, जाणवा भावु अभ्यास ॥16॥

विभिन्न रागों में निबन्ध कवि का पद साहित्य भी भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से उत्तम है। इन पदों में कवि हृदय की भक्ति भावना अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुई है। कवि ईश्वर के अलौकिक सौंदर्य का वर्णन करता उसीमें ध्यानस्त हो अपने को उनके चरण कमलों में स्थान देने की सहृदय याचना करता हुआ कहता है –

पेखो सखी चन्द्रप्रभ मुख–चंद्र ।
सहस किरण सम तन की आभा देखत परमानंद ॥1॥

समवसरण शुभ भूति विभूति सेव करत सत इन्द्र ।
महासेन – कुल – कंज दिवाकर जग गुरू जगदानंद ॥2॥

मनमोहन मूरति प्रभु तेरी,मैं पायो परम मुनिंद।
श्री शुभचन्द्र कहे जिनजी, मोकूं राखो चरन अरविंद ॥3॥

शुभचन्द्र की अधिकांश रचनाओं में हिन्दी, गुजराती, अपभ्रंश का मिश्रित रूप दृष्टिगोचर होता है। किन्तु उनके स्फुट पद वास्तव में भाव एवं भाषा की दृष्टि से अत्यंत उत्कृष्ट हैं। उनमें

ब्रजभाषा की बड़ी अनुपम कर्मप्रिय एवं संगीतात्मक पदावली समुपलब्ध होती हैं।

ब्रह्मजयसागर (संवत 1580–1655) :

धोधानगर (गुजरात) से विशेष संबंध रखने वाले ब्रह्मचारी ब्रह्म जयसागर का समय सं. 1580 से 1655 तक का माना जाता है।[22] इनके गुरू भट्टारक रत्नकीर्ति थे। हिन्दी भाषा एवं जैन धर्म का प्रचार निहित करने वाली इनकी रचनाएँ प्रायः लघु और साधारण कोटि की हैं। डॉ. कासलीवाल ने इनकी लगभग 12 लघु कृतियों का उल्लेख किया है।[23] इनकी **''पंच कल्याण गीत''** रचना में शांतिनाथ के पाँच कल्याणकों का वर्णन है तथा दूसरी **''चुनडी गीत''** एक सुंदर रूपक है जिसमें नेमिनाथ के चरित्र रूपी चुनडी की विशेषता भव्यता एवं अलौकिकता का कवि ने बड़ा ही काव्यमय वर्णन किया है। इन आध्यात्मिक रूपक काव्य में कवि कहते हैं –

चित चुनड़ी ए जे घर में, मनवांछित नेम सुख करसे।
संसार सागर ते तरसे, पुन्य रत्ननो भंडार भरसे ॥

सुरि रत्न कीरति जसकारी शुभ धर्म शशि गुण धारी ।
नर–नारी चुनड़ी गावे, ब्रह्मजयसागर कहे भावे ॥

इनकी रचनाएँ प्रायः अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी एवं गुजराती में है।

रत्नकीर्ति भट्टारक (सं. 1600–1656) :

जौनों के हुबंड जाति से उत्पन्न हुए रत्नकीर्ति भट्टारक का जन्म संवत 1560 के आसपास धोधानगर (अहमदाबाद) में पिता सेठ देवीदास और माता सहजलदे के घर में हुआ था।[24] वे बाल्यकाल से ही कुशाग्रबुद्धि, व्युत्पन्नमति एवं साहित्य के प्रति अभिरूचि रखते थे। प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में अध्ययन की इनकी गहनता परिलक्षित होती है। एक दिन भट्टारक अभयनन्दि से इनका साक्षात्कार हुआ। इनकी वाक् चतुर्यता, विद्वता, बाल प्रतिभा जैसे विशिष्ट गुणों से अभिभूत होकर भट्टारक अभयनन्दिने इन्हें अपना शिष्य बना लिया।

इन्होंने अपने गुरू से सिद्धांत, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त किया । व्युत्पन्नमति रत्नचंद्र ने इन सभी विद्याओं एवं मंत्र विद्या में पारंगत होकर पूर्ण अधिकार कर लिया। कुछ समय उपरांत गुरू अभयनन्दि ने इन्हें अपना पट्ट शिष्य घोषित

कर सं. 1643 में एक विशेष समारोह में भट्टारक पद पर नियुक्त किया। वे सं. 1656 तक इस पद पर बने रहे।

रत्नकीर्ति अपने समय के प्रसिद्ध कवि एवं विद्वान थे। सौंदर्य, विद्वता, वैभव एवं चरित्र आदि गुणों में ये अतिमानव थे। उन्हें दूसरा उदयन भी कहा गया है। दीक्षा, संयमश्री, मुक्तिलक्ष्मी आदि अनेक कुमारियों के साथ उनका विवाह हुआ था। ये उनके आध्यात्मिक विवाह थे।

रत्नकीर्ति के अब तक 40 पद एवं 'नेमिनाथफाग', 'नेमिनाथ बारह मासा,' 'नेमीश्वर हिण्डोलना' तथा 'नेमिश्वर रास' आदि रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं।[25]

सुमति सागर (सं. 1600-1665) :

बह्मचारी सुमति सागर भट्टारक अभयनंदि के शिष्य थे। गुरू अभयनंदि की मृत्यु के पश्चात् वे भट्टारक रत्नकीर्ति के संग रहने लगे। सुमति सागर गुरू अभयनंदि तथा भट्टारक रत्नकीर्ति के समय में विद्यमान थे इसी अनुमान के द्वारा डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल ने इनका समय सं. 1600 से 1665 तक का माना है।[26] इन्होंने अपने गुरू अभयनंदि तथा रत्नकीर्ति की प्रशंसा में अनेक गीत लिखे हैं। इनकी कुल 10 लघु रचनाएँ प्राप्त हैं।[27] ये सभी रचनाएँ भाषा एवं काव्यत्व की दृष्टि से साधारणतः अच्छी हैं। ''**नेमिवंदना** से एक उदाहरण दृष्टव्य है''[28] –

ऊजल पूनिम चंद्रसम, जस राजीमती जगि होई।
ऊजलु सोहइं अबला, रूप रामा जोइ।
ऊजलु मुखवर भामिनी, खाय मुख तंबोल।
ऊजल केवल न्यान जानूं, जीव भव कलोल।

चन्द्रकीर्ति सं. 1600-1660 :

चन्द्रकीर्ति भट्टारक रत्नकीर्ति के प्रिय शिष्यों में से एक थे। प्रतिभा सम्पन्न चन्द्रकीर्ति गुजरात के वलसाड, बारडोली तथा राजस्थान और गुजरात के सीमावर्ती बागड की भट्टारक गादियों से विशेष संबधित थे। विशेषतः बारडोली, भडौच, डूंगरपुर, सागवाड़ आदि नगर इनके साहित्य निर्माण के केन्द्र रहे हैं।

कवि ने अपनी रचना जयकुमार आख्यान में अपनी गुरू परंपरा का वर्णन करते हुए अपने गुरू के रूप में रत्नकीर्ति को स्मरण किया है। [29]

चन्द्रकीर्ति की प्राप्त रचनाओं में ''सोहहकरण रास'' और जयकुमार आख्यान विशेष उल्लेखनीय है। इनके रचित हिन्दी पद भी उपलब्ध है।

विनय समुद्र (सं. 1602–1604 आस पास)

विनय समुद्र उपकेशगच्छ में हुए सिद्धसूरि के शिष्य हर्षसमुद्र के शिष्य थे।[30] इनके जीवनविषयक अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हुई, किन्तु अत्याधिक गुजराती प्रभावित भाषा से कवि का गुजरात-निवासी होने या गुजरात में दीर्घकाल तक रहने का अनुमान किया जा सकता है। इनके द्वारा रचित 7 कृतियों का उल्लेख मिलता है।[31] इनके द्वारा 'मृगावती चौपाई', 'चित्रसेन पद्मावती रास', ''पद्मचरित्र'' लिखित रचनाएँ हैं। इसमें ''मृगावती चौपाई'' विशेष उल्लेखनीय है। शील विषय पर रचित इस काव्य ग्रंथ की रचना बीकानेर में सं. 1602 में हुई थी।

सं. 1604 में रचित इनकी रचना ''पद्मावती रास'' में नवकार मंत्र की महिमा है। ''पद्मचरित्र'' में राम और सीता का चरित्र प्रधान हैं। इनकी समस्त रचनाएँ गुजराती मिश्रित हिन्दी में हैं।

आणदवर्धन सूरि (सं. 1608 आसपास) :

ये खरतगच्छ के धर्मवर्धनसूरि के शिष्य थे।[32] इनके समकालीन खरतगच्छ में ही एक अन्य महिमा सागर के शिष्य आणदवर्धन भी हो गये हैं। इनके जीवन काल की जानकारी देने वाली किसी प्रकार की सामग्री नहीं मिल पाई है। इनके द्वारा रचित एकमात्र रचना ''पवनाभ्यास चौपाई'' उपलब्ध है।[33] इनकी अन्य किसी हिन्दी या गुजराती कृति की जानकारी नहीं मिलती।

मालदेव (सं. 1612 आसपास) :

खंभात के श्रावक कवि ऋषिभदास ने अपने ''कुमार पाल रास'' के प्रारंभ में जिन जैन-गूर्जर कवियों का स्मरण किया है उनमें वृद्ध तृपागच्छ के आचार्य भावदेवसूरि के शिष्य[34] मालदेव का भी उल्लेख है।[35] इनकी एक रचना ''भोजप्रबंध'' के संबंध में नाथुराम प्रेमजी लिखते

है[36] – भाषा प्रौढ़ है; परन्तु उसमें गुजराती की झलके हैं और अपभ्रंश शब्दों की अधिकता है। कारण, कवि गुजरात से दीर्घकालीन सम्बन्ध स्थापित होता है।

मालदेव कवि के प्राकृत एवं संस्कृत ग्रंथ भी मिलते हैं। इनके द्वारा रचित 11 रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[37] इनकी अधिकांश रचनाओं के विषय लोक कथाओं पर आधारित हैं। इनकी रचनाओं में प्रयुक्त सुभाषितों की अत्याधिक लोकप्रियता के कारण इनके परवर्ती कवियों ने भी इनके सुभाषितों को उद्धृत किया है। जयरंग कवि ने अपने संवत 1721 में रचे ''कयवेन्ना रास'' में मालकवि के सुभाषितों का खुलकर प्रयोग किया ।

दुसह वेदन विरह की, साच कहे कवि माल
जिं जिंणकी जोड़ी विछड़ो, तणिका कवण हवाल ॥3॥

इनके अनन्तर श्री नाहटाजी ने इनकी अन्य कुछ रचनाओं के साथ गीत, स्तवन, अदि का भी उल्लेख किया है।[38] इनकी एक रचना 'वीरंगदा चौपाई' में रचना काल संवत 1612 दिया गया है। अतः इसी आधार पर उनका उपस्थिति काल संवत् 1612 के आसपास माना ज़ा सकता है। इनकी प्रमुख रचनाएँ **पुरन्दरकुमार चौपाई** एवं **भोज प्रबंध** हैं।

ब्रह्म रायमल्ल (सं. 1615–1633) :

रत्नकीर्ति परंपरा के ब्रह्मरायमल्ल का जन्म हूबड़ जाति में हुआ था। इनके गुरू मुलसंघ शारदा गच्छ के आचार्य रत्नकीर्ति के पट्टधर अनन्तकीर्ति थे।[39] इनके पिता का नाम महीय एवं माता का नाम चंपा था।[40] इनके जन्म एवं जीवनवृत की अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती परंतु रचनाओं में गुजराती का पुट देखते हुए यह संभावना प्रतीत होती है कि गुजरात में किसी भट्टारक गद्दी से इनका सम्बन्ध अवश्य रहा होगा। अन्य एक कारण के आधार पर श्री नाहटाजी ने इनके द्वारा रचित अधिकांश रचनाओं का राजस्थान के विभिन्न स्थानों में रचा जाना, इनको राजस्थान का निवासी बना देता है। ''इस बात पर ज़ोर दिया है।''

ब्रह्म रायमसल्ल ने हिन्दी में अनेक काव्यों की रचना की है। इनकी भाषा सरस और प्रसाद गुण से युक्त है। इन्होंने जैन नैयायिकों और सैद्धांतिकों का भी गहन अध्ययन किया था। इनके सरल काव्य में जैन धर्म के तत्व तथा मानव की सूक्ष्म वृत्ति का गहन परिचय है।

यही कारण है कि इनका काव्य रस पूर्ण हो उठा। इनके द्वारा रचित सात हिन्दी काव्य प्राप्त होतें हैं, जिनकी प्रतियाँ जयपुर के भण्डारों में सुरक्षित हैं।[41] इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं -

1. नेमीश्वर रास (सं. 1615)
2. हनुवंतकथा (मन था (अप्राप्य)

कनकसोम (सं. 1615-1655)

कनकसोम का जन्म ओसवाल नाहटा परिवार में हुआ था। ये खरतगच्छीय दयाकलश के शिष्य अमर मणिक्य के शिष्य साधुकीर्ति के गुरूभ्राता थे।[42] इनके द्वारा गुजराती भाषा में लिखि गई रचनाएँ **''मंगल कलश भाषा''**[43] 'तथा ''आषाढ़ भूति स्वाध्याय''[44] प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी भाषा में ''जइन पदवेलि'' नामक रचना का निर्माण किया था।[45]

''जइन पदवेलि'' में खरतगच्छीय साधुकीर्ति द्वारा अकबर के दरबार में तपागच्छियों को शास्त्रार्थ में निरुत्तर करने का वर्णन है।

कुशल लाभ (सं. 1616 आसपास) :

कुशल लाभ जन्मजात कवि थे। इन्होंने भक्ति शृंगार और वीर रस में सफल कविताओं का निर्माण किया । इन्होंने शृंगार परक रचना **''माधवानल कामकंदला** एवं **ढ़ोलामारु चौपाई** जैसी विशिष्ट रचनाएँ देकर हमारे साहित्य जगत को समृद्ध बनाया। **''माधवानल कामकंदला''** रचना श्रावक हरराज की प्रेरणा से फाल्गुन सुदी 13 रविवार को सं. 1616 में हुई थी।[46] जो इन पंक्तियों से ध्यातव्य है –

''रावण मालि सुपाट धरि, कुंवर श्री हरिराज ।
विरचिएह सिण गारसि, तास केतूहल काज ॥
संवत् सोल सोलोतरह जैसलमेर मझारि ।
फागुण सुदि तेरसि दिवास, विरचि आदित्य वार ॥
गाथा साढ़ी पन्चणइं: ए चउपइ प्रमाण ।''

कवि की यह रचना आज भी गुजरात एवं राजस्थान में प्रसिद्ध है। इस काव्य रचना की विशेषता यह है कि इसमें माधवानल और कामकंदला के प्रेम को कथानक के रूप में लिया

गया है, तथा प्रेम और शृंगार के विषय का बड़ा ही शिष्ट और मर्यादापूर्ण निर्वाह किया गया है। इस कृति में कुल साढ़े पाँच सौ चौपाइयाँ हैं।

इनकी दूसरी प्रसिद्ध लोकप्रिय रचना ''ढोलामारू चौपाई'' का रचना काल सं. 1617 है।[47] लोक कथाओं से सम्बन्धित कवि के ये दोनों ग्रन्थ आनन्द काव्य महोदधि में प्रकाशित हैं। ''ढोला मारु रा दोहा'' का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा-वाराणसी से भी हुआ है और ''माधवानल काम कंदला'' का प्रकाशन गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा से।

इनके जीवन काल विषय की अधिक जानकारी का अभाव है। इनके गुरू खरतगच्छीय अभयदेव उपाध्याय थे।[48] गुजरात के जैन इतिहासकार एवं लेखकों ने इन्हें जैन-गूर्जर कवियों के अंतर्गत परिणित किया है।[49] राजस्थान और गुजरात के विभिन्न स्थलों में रचित इनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं। इनकी कृतियों का अवलोकन करने से भी स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात के वीरमगाम, खंभात आदि स्थानों में दीर्घकाल तक निवास करके इन्होनें पर्याप्त काव्य रचनाएँ की हैं। कुसल लाभ राजस्थानी के रूप में प्रख्यात हैं। इनकी राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी तीनों भाषाओं में कृतियाँ मिलती हैं इससे स्पष्ट होता है कि कवि का गुजरात से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

साधुकीर्ति (सं. 1618-1646) :

विद्वान और संस्कृत के प्रकांड पण्डित विवक्षित साधु-कीर्ति खरतरगच्छ के साधु थे और इनका सम्बन्ध जैसलमेर बृहद ज्ञान भंडार के संस्थापक जिनभद्रसूरि की परम्परा से रहा है। इन्होंने सं. 1625 मिगसर वदी 12 को आगरे में अकबर की सभा में तपागच्छीय बुद्धिसागर से शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी । ''विशेष नाममाला'', ''संघपट्टक वृति'', भक्ताभर अवचूरी'' आदि इनकी संस्कृत रचनाएँ हैं। सं. 1622 में इनको जिनचन्द्र सूरि ने उपाध्याय पद प्रदान किया था।

इनके जन्म एवं जीवनकाल संबंधित अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हई है। परंतु इतना अवश्य ज्ञात होता है कि ये सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक कवियों में से एक हैं। इनके गुरू खरतगच्छीय मतिवर्धन - मेरनतिलक दयाकलश अमरमाणिक्य थे।[50] इनकी कुछ रचनाएँ गुजरात में खासकर पाटण में रची हुई प्राप्त हुई हैं। इससे इनका गुजरात से घनिष्ठ संबंध

प्रतीत होता है। इनकी हिन्दी, राजस्थानी रचनाओं में गुजराती के अत्याधिक प्रभाव को देखते हुए संभव है कवि गुजरात के ही निवासी रहे हो । श्री मो.द.देसाई ने इनकी 16 रचनाओं का उल्लेख किया है।[51]

इनकी गणना भक्त कविओं में की जाती है। विशेषतः स्तुति, स्त्रोत, स्तवन और पदों की रचना की है।

सं. 1646 की माघ कृष्ण चतुर्दशी को जालोर में अनशन कर ये स्वर्ग सिधारे ।

सुमतिकीर्ति (सं. 1620 आसपास) :

सत्रहवीं शती के सुमतिकीर्ति मूलसंध में स्थित नंदिसंघ बलात्कारगण एवं सरस्वतीगच्छ के ज्ञानभूषणसूरि के शिष्य थे।[52] ये संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा के ज्ञाता और इन्हीं भाषाओं में इन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की थी। अपने समय के ये संत विद्वान थे, इनके जीवन का मूल उद्देश्य साहित्य-साधना था। अपने संपूर्ण जीवन काल में सुमतिकीर्ति ने अपनी साहित्य-साधना एवं आत्मसाधना द्वारा गुजरात और राजस्थान की अनपढ़ और मिथ्याडम्बरों की विषाक्त प्रवृत्तियों में फंसी प्रजा में चेतना के निर्वाह करने का कार्य अविरत रूप से किया।

इन्होंने अपनी ''प्राकृत पंचसंग्रह'' टीका संवत् 1620 भाद्रपद शुक्ल दशमी को ईडर के ऋषदेव मंदिर से पूर्ण की थी । जिसका संशोधन ज्ञान भूषण ने किया था।[53]

इनके द्वारा निर्मित निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं –

1) धर्मपरीक्षा रास

2) जिनवर स्वामी वीनती

3) जिहवादंत विवाद

4) वसंत विद्या विलास

5) पद काल भवे तो जीव बहूँ परिभमता देहल्यो मानवभव साधो रे भाई ।

6) शीतलनाथ गीत ।

कवि की अन्य लघू रचनाएँ गीत, पद एवं संवाद रूप में काव्यत्व से पूर्ण हैं। इनके काव्य लेखन की भाषा सर्वत्र गुजराती मिश्रित हिन्दी है।

वीरचन्द्र (17वीं शती) :

भट्टारकीय बलात्कारगण शाखा के संस्थापक भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति सूरत की भट्टारक गद्दी के स्थापक थे। भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की परम्परा में भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य वीरचन्द्र हुए, जो गुरू लक्ष्मीचन्द्र की मृत्यु पश्यात् भट्टारक बने, इनका संबंध भी विशेषत सूरत गद्दी से था।[54] लक्ष्मीचन्द्र सम्वत् 1582 तक भट्टारक पद पर रहे, अतः इनका समय 17वीं शती का प्रथम चरण ही होना चाहिए ।

वीरचन्द्र व्याकरण एवं न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे। साथ ही छन्द, अलंकार एवं संगीत आदि शास्त्रों में भी इन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की थी। अपने जीवन काल में पूर्ण साधु जीवन यापन करते हुए संयम एवं साधुता का उपदेश देते रहे।

संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एवं गुजराती पर इनका प्रभुत्व था। अब तक हुई शोध प्रबंध की प्रवृत्ति में इनकी आठ रचनाएँ उपलब्ध हैं जो इन्हें उत्तम कोटि के सर्जक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

''वीर विलास फाग'', ''जम्बूस्वामी वेलि'', ''जिन आंतरा'', ''संबोध सत्तागुण'', ''नेमिनाथ रास'', ''चित्तनिरोध कथा'', ''बाहुबलि वेलि'' आदि रचनाएँ इनके द्वारा रचित हैं। वीरचन्द्र की यह कृतियाँ उनकी प्रतिभा, विद्वता एवं साहित्यप्रेम की ज्वलंत प्रमाण हैं।

जयवंत सूरि (17वीं शताब्दी प्रथम चरण) :

जयवंतसूरि के गुरू तपागच्छीय उपाध्याय विनय मण्डन थे।[55] इनका दूसरा नाम गुण सौभाग्य था।[56] सम्वत् 1587 वैशाख कृष्ण पक्ष 6 रविवार को शत्रुंजय पर ऋषभनाथ तथा पुण्डरीक के मूर्ति-प्रतिष्ठान समारोह में अपने गुरू के साथ ये भी उपस्थित थे।[57] **इनकी ''नेमिराजुल बार मास बेल प्रबन्ध'', ''सीमन्धर चन्द्राउला''** तथा **''स्थूलिभद्र मोहन-वेलि''** आदि रचनाएँ सरल राजस्थानी मिश्रित हिन्दी में हैं। श्री देसाईजी ने इनकी कृतियों का परिचय दिया है।[58]

भट्टारक सकल भूषण (17वीं शती प्रथम एवं द्वितीय चरण) :

संवत् 1627 में रचित अपने संस्कृत ग्रंथ ''उपदेशरत्नमाला'' से यह स्पष्ट है कि ये भ. सुमतिकीर्ति के गुरू भ्राता थे।[59] अपने गुरू शुभचन्द्र को अपने **''पाण्डव-पुराण''**

सं.1608 रचनाकाल तथा **''करकन्डु चरित''** रचना सम्वत् 1611 की रचना से इन्होंने सहयोग दिया था।[60]

इनकी हिन्दी रचनाओं का पता डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल जी को सर्वप्रथम आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर से मिला है। उन्होंने इनकी निम्नांकित हिन्दी लधु रचनाओं का उल्लेख किया है।[61]

1) सुदर्शन गीत (सेठ सुदर्शन के चरित्र पर आधारित चरित्रप्रधान कथाकाव्य)

2) नारी गीत (उपदेशप्रधान लघुकाव्य) तथा पद ।

कवि की भाषा पर गुजराती का विशेष प्रभाव है।

उदयराज-उदो (सं. 1631-1676) :

उदयराज के पिता खरतगच्छीय भावहर्ष के शिष्य भद्रसार थे तथा श्रावक इनके गुरू थे।[62] इनका जन्म सम्वत् 1631 में हुआ था।[63] नाहटा के मतानुसार इनका सम्बन्ध गुजरात से रहा होगा[64] क्योंकि **''चन्दन मलयागिरि''** कथा के प्रणेता तथा कवि भ्रदसार का संबंध गुजरात से रहा है। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त कुछ गुजराती प्रयोग भी इस बात का प्रमाण है। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं –[65]

1) मगन छतीसी सं. 1667, भांडावई

2) गुण बावनी सं. 1676

3) वैद्य विरहणी प्रबंध

4) चौक्सि जिन सवैया

5) 500 दोहे।

इनकी रचनाओं मे दोहे, कवित्त, बावनी विशेष प्रसिद्ध हैं।

कवि की भाषा ब्रज व राजस्थानी के संस्पर्शों से युक्त है। कवि की प्रतिभा उच्चकोटि की नजर आंती है ।

कल्याण सागर सूरि (सं. 1633-1718) :

अंचलगच्छ के 64वें पट्टधर[66] कल्याण सागर सूरि कवि के साथ-साथ प्रतिष्ठित (प्रसिद्ध) आचार्य भी थे। इनके जीवन विषयक विस्तृत परिचय श्री देसाई ने दिया है।[67]

सं. 1633 में लोलाडा में इनका जन्म हुआ था। सं. 1642 में दीक्षा ली। सं. 1649 में अहमदाबाद में आचार्यपद प्राप्त हुआ और सं. 1670 में पाटण में **गच्छे शपद** प्राप्त किया।

इनकी दो कृतियाँ उपलब्ध हैं –

प्रथम **''अगडदत रास''** गुजराती कृति है। अगडदत जैन गुजराती कवियों का प्रिय विषय रहा है। दूसरी कृति **''वीसी''** जो एक गुजराती मिश्रित हिन्दी रचना है। सं. 1718 में भुज नगर में इनका स्वर्गवास हुआ ।

अभय चन्द्र (सं. 1640-1721) :

ख्याति प्राप्त अभय चन्द्र भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र की परम्परा के भट्टारक कुमुदचन्द्र के प्रिय शिष्यों में से थे। इनका जन्म सं. 1640 में लगभग ''हूंवडवंश'' में[68] ''श्रीपाल'' एवं ''कोडभदे'' नामक दंपत्ती के घर में हुआ था। छोटी उम्र में ही इन्होंने पंच महाव्रतों का पालन आरम्भ कर दिया था।[69]

गुरू की मृत्योपरांत भट्टारक गद्दी पर विराजकर भट्टारक का कार्यभार संभाला। जन-साधारण में धार्मिक जाग्रति उत्पन्न करने हेतु इन्होंने गुजरात एवं राजस्थान में बहुत यात्राएँ की। (भ्रमण किया) डॉ. कासलीवाल जी के उल्लेख अनुसार सं. 1685 की फाल्गुन सुदी 11 सोमवार के दिन बारडोली नगर में इनका पट्टाभिषेक हुआ। सं. 1721 तक इस पद पर वे बने रहे।[70]

अभयचन्द्र संस्कृत और प्राकृत के साथ न्यायशास्त्र, अलंकारशास्त्र तथा नाटक के गहन अध्ययन कर्ता थे।[71] अपने अनेक शिष्यों के साथ सर्वसामान्य में आध्यात्मिक चेतना जगाने का कार्य प्रारंभ किया । इनके शिष्यों ने इनकी प्रशंसा में अनेक गीतों की रचना की, जिसके अंतर्गत इनके व्यक्तित्व प्रतिभा एवं लोकप्रियता के साथ साहित्य-प्रेम की जानकारी प्राप्त होती है। इनके प्रमुख शिष्यों में दामोदर, धर्मसागर, गणेश देवजी आदि उल्लेखनीय हैं। कवि ने अधिकतर लघुगीत की रचना की है। इनके द्वारा रचित अबतक 10 कृतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं।[72] इनमें से –

''वासुपूज्य जी धमाल'', ''चन्दगीत'', ''सूखडी'' का समावेश होता है।

कवि की अन्य अत्यंत लघु कृतियाँ भी प्राप्त हैं, जो साधारण कोटि की हैं। भाषा के अध्ययन की दृष्टि से इनकी कृतियाँ का अधिक महत्व है। इनकी लेखनी की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है।

समय सुन्दर महोपाध्याय (सं. 1641-1700) :

राजस्थानी एवं गुजराती साहित्य के सबसे बड़े गीतकार, व्याकरण, अलंकार, छंद ज्योतिष तथा जैन साहित्य आदि के प्रकाण्ड पण्डित कवि समयसुन्दर का जन्म मारवाड के सांचौर (सत्यपुर) गाँव की पोरवाल जाति में पिता रूपसी और माता लीलादे के यहाँ हुआ था।[73] अनुमानित है कि इनका जन्म सं. 1620 में हुआ था।[74] अतः साक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि वे जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के बृहद खरतगच्छ में अवरित हुए थे। इनके गुरू सकलचन्द्रमणि थे।[75]

किशोरावस्था में ही इन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया था।[76] इन्हें दीक्षित करने के कुछ समय (वर्षोपरांत) उपरांत ही स्वर्गवास हो जाने के कारण अपका विद्याध्ययन वाचक महिमराज और महोपाध्याय समयराज के सानिध्य में हुआ । कुशाग्र बुद्धि और असाधारण प्रतिभा के बल पर आप ''गण'' और तदुपरान्त ''महोपाध्याय'' के पद पर पहुँचे थे।

इन्होनें साठ वर्ष तक निरंतर साहित्य-साधना कर भारतीय वाङ्मय को समृद्ध किया।

विभिन्न विद्वानों द्वारा इनकी अनेक कृतियों का उल्लेख किया गया है। इनकी सैंकड़ों कृतियों को ध्यान में रखकर ही शायद यह कहा गया था - **''समयसुन्दर गीतड़ा, भीतां परना चीतराया, कुम्भे राणाना भीतंढा''**

इनके द्वारा रचित कृतियाँ ''स्थूलिभद्ररास'', ''वस्तुपाल तेजपाल रास'', ''सीताराम चौपाई'', ''चार प्रत्येक बुद्ध रास'' मृगावती चरत्रि ज्ञात होती है। ''स्थूलिभद्ररास'' प्रथम कृति में ही कवि ने अपनी काव्य कला और प्रतिभा का दर्शन कराया है। ''सीताराम चौपाई'' का ''सीता पर लोकोपवाद'' तथा ''रामलक्ष्मण-संवाद'' और ''नलदमयंती रास'' का ''कर संवाद'' - ये तीनों प्रसंग कवि की काव्य कला एवं प्रतिभा के सुन्दर प्रमाण हैं। इनकी लघु कृतियाँ बीकानेर से प्रकाशित ''समयसुन्दर-कृति-कुसुमांजलि'' में समाविष्ट हैं।

रास साहित्य की भाँति कवि का भक्ति साहित्य भी महत्वपूर्ण है। इनमें कवि की उत्तम संवेदना तथा सर्वोच्च धर्म भावना का प्रकाशन हुआ है। इनके द्वारा रचित धर्म, कर्म आदि छतीसियों में इनकी बहुश्रुतता एवं गहन ज्ञान के संकेत मिलते हैं। इस प्रकार इनके काव्य में लय-वैविध्य शब्दमाधुर्य, सुंदर प्रास-योजना, अनेक लोकप्रिय ढाले, सरल तत्वज्ञान, उत्कृष्ट संवेदनशीलता आदि के दर्शन होते हैं। इनकी रचनाओं में भक्ति और शृंगार साथ-साथ चले हैं। 17वीं शताब्दी का हिन्दी, मारवाड़ी, गुजराती तथा अन्य प्रादेशिक देशियों-ढालों तथा राग-रागिनियों का सर्वोत्तम प्रयोग किया है।[77] इनकी भाषा पर गुजराती व राजस्थानी का विशेष प्रभाव रहा। मुगल दरबारों से सम्पृक्त होने के कारण इनकी भाषा में उर्दू-फारसी के शब्द भी आ ही गए हैं। विपुल साहित्य-सर्जन के द्वारा कवि का लक्ष्य कथा के माध्यम से सम्यक ज्ञान धर्म व सदाचार को पोषित करना, दान, शील आदि गुणों का प्रचार करना रहा है। कवि का समस्त साहित्य मानव के लिए प्रेरणा रूप सिद्ध होता है।

कवि की रचना व कृतियों को ध्यान में रखकर यह कहना उचित होगा कि इन्होंने अपना अंतिम समय अहमदाबाद (गुजरात राज्य) में ही रहकर बिताया और सं. 1702 चैत्रशुक्ल 13 को अपनी यह लीला समाप्त की।[78]

कल्याणदेव (सं. 1643 आसपास) :

कल्याणदेव के गुरू खरतगच्छीय जिनचंद्रसूरि के शिष्य चरणोदय थे।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के खरतगच्छीय साधुओं का राजस्थान और गुजरात में विशेष विहार रहा है। अतः कल्याणदे की भाषा में प्रांतीय भाषा का मिश्रण प्रायः देखा जाता है। इनकी भाषा में गुजराती का अधिक मिश्रण है। अतः कवि का गुजरात से घनिष्ठ संबंध सिद्ध होता है।

इनकी एक कृति ''देवराजवच्छराज चउपइ'' सं. 1643 में विक्रमनगर में रची गई प्राप्त होती है।[79] यह 64 पदों की रचना है।

कुमुदचन्द्र (सं. 1645-1687) :

भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य कुमुदचन्द्र का जन्म गोपुर ग्राम में हुआ था। इनके पिता सदाफल एवं माता पदमाबाई थीं। इनका कुल मोढवंश में विखात था।[80] बाल्यकाल से ही

उदासीन एवं अध्ययनशील होने के कारण इन्होंने किशोरावस्था में ही सन्यास ले लिया था। अध्ययन कुशलता के कारण शीघ्र ही इन्होंने व्याकरण, छंद, नाटक, न्याय आगम एवं अलंकार शास्त्र में निपूणता प्राप्त की। इनके ज्ञान से अभिभूत होकर गुजरात के बारडोली में एक पट्ट स्थापित कर सम्वत् वैशाख मास में जैनों के प्रमुख संत (भट्टारक) पद पर इन्हें अभिषिक्त किया।[81] प्राचीन काल से गुजरात में स्थित बारडोली आध्यात्म का केन्द्र रहा है। ऐसे पवित्र वातावरण में वहाँ के लोक समुदाय में धार्मिक चेतना जाग्रत कर उन्हें सच्चरित्र, संयमी एवं त्यागमय जीवन की ओर प्रेरित किया। भट्टारक के पद पर वे वि. सं. 1687 तक प्रतिष्ठित रहे।

कुमुदचंद्र के प्रमुख शिष्य अभयचंद्र ब्रह्मसागर, कर्मसागर, संयमसागर, जयसागर एवं गणेश सागर आदि हैं। जिनका उल्लेख कवि की उपलब्ध रचनाओं से प्राप्त होता है। ये सभी हिन्दी व संस्कृत के विद्वान थे और इन्हीं के द्वारा उत्तम कृतियों का सर्जन भी हुआ था।

कुमुदचंद्र की अब तक की प्राप्त रचनाओं में 28 रचनाएँ प्रयुर स्फुट पद तथा विनतियाँ प्राप्त हैं।[82] कवि की रचनाओं में राजस्थानी और गुजराती का अत्याधिक प्रभाव है। प्रमुख रचनाओं में **''नेमिनाथ बारहमासा''**, **''नेमीश्वर गीत''**, **''हिन्दोलना गीत''**, **''वणजारा गीत''**, **''दर्शनधर्म गीत''**, **''सपृव्यसन गीत''**, **''पार्श्वनाथ गीत''**, **''चिंतामणि पार्श्वनाथ गीत'' आदि उल्लेखनीय हैं।** इनके द्वारा लिखित अनेक पद भी उपलब्ध होते हैं, जो दि. जैन. अ. क्षेत्र श्री महावीरजी, साहित्य शोध विभाग, जयपुर से प्रकाशित ''हिन्दी पद संग्रह'' में डॉ. कासलीवाल के संपादक तत्व में प्रकाशित है।

जिनराज सूरि (सं. 1647-99) :

ये खरतगच्छीय अकबर बादशाह प्रतिबोधक युगप्रधान विख्यात आचार्य जिनचंद्रसूरि के पट्टधर जिर्सिहसूरि के शिष्य तथा पट्टधर थे।[83] इनका जन्म वि. सं. 1647 में हुआ था इनके पिता धर्मसिंह व माता का नाम धारल देवी था। सं. 1656 मागसर सुदि 3 को बिकानेर में इन्होंने दीक्षा ग्रहण की, दीक्षा का नाम राजसमुद्र था।[84] सं. 1660 में इन्हें वाचक पद मिला। सं. 1674 में ये आचार्य पद से विभूषित हुए ।

ये बहुत बड़े विद्वान और समर्थ कवि थे। तर्क, व्याकरण, छंद, अलंकारकोश, काव्यादि के अच्छे जानकार थे। इन्होंने श्रीहर्ष के नैषधीय महाकाव्य पर ''जिनराजि'' नामक

संस्कृत टीका रची है। इन्होंने स्वानांग की रचना की है, इसका भी उल्लेख मिलता है।[85] 19वीं सदी के मस्तयोगी प्रखर समालोचक तथा कवि ज्ञान सागर ने इनको अवध्य वचनी कहा है।[86] उनकी अध्ययन व कुशाग्रबद्धि की प्रशंसा करते हुए 'श्री सार' ने अपने रास में लिखा है –

तेज कला कोई नहीं, शास्त्र नहीं वलि तेह ।
विद्या ते दीसइ नहीं, कुमर नइ नावह जेह ॥3॥

इनकी उपलब्ध रचनाओं में सर्वप्रथम रचना सं.1665 की रचित ''गुणस्थान विचारगर्मित पार्श्वनाथ स्तवन'' है, जो जैन शास्त्र के कर्म, सिद्धांत और आहमोत्कर्ष की पद्धति से सम्बन्धित है। इनकी 9 कृतियाँ प्राप्त हैं।[87]

इनकी अन्य कृति 'गुणधर्म रास'' 1699 तथा ''चद्रराज चौपाई'' का उल्लेख श्री चौक्सी ने किया है।[88] श्री नाहटाजी ने ''कायवन्ना रास'' तथा ''जैन रामायण'' का राजस्थानी रूप आदि का उल्लेख किया है।[89]

आचार्य जिनराजसूरि धर्मोपदेश और कुशल कवि दोनों थे । उनकी भाषा में सादगी है, साहित्यिकता है, भावावेग है और अकृत्रिम अलंकरण भी है। उपमा, रूपक तथा उत्पेक्षा सहज प्रयोग, कहावतों व मुहावरों का प्रचलित रूप तथा विविध छन्द योजना भाषा की शक्तिमता में सहायक है। भाषा बड़ी ही सरल, सरस, सुबोध तथा माधुर्यगुण और नाद-सौन्दर्य से युक्त है। विविध प्रकार की ढ़ालों और रागरागिणियों के सफल प्रयोग से काव्यवीणा के तार स्वतः झनकृत हो उठे हैं।

कवि ने कथात्मक और सुतिपरक इन रचनाओं के साथ आध्यात्मिक उपदेश-परक पद, गीत, तथा छत्तीसियों की भी रचना की है जो ''जिनराज कृति-कुसुमांजलि'' में संकलित है।

सं. 1699 में अषाढ़ सुदि नवमी को इनका स्वर्गवास हुआ।

वादि चन्द्र (1651-54) :

वादिचन्द्र एक उत्तम कोटि के साहित्य सर्जक थे। इनके जीवन विषय में जानकारी एवं उपलब्ध सामग्री का अभाव है। श्री मो. द. देसाई ने इनको भट्टारक ज्ञानभूषण का शिष्य

बताया है।[90] वास्तव में ये मूलसंघ के भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य और प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। इनकी गुरूपरम्परा इस प्रकार स्वीकृत है –

दिगम्बर मूलसंघ के विद्यानन्दि → मल्लिघूषण → लक्ष्मीचन्द्र → वीरचन्द्र → ज्ञानभूषण → प्रभाचन्द्र → वादिचन्द्र[91]

साहित्य सर्जन की प्रवृत्ति को कार्यान्वित करते हुए इन्होंने ''पार्श्वपुराण'', ''ज्ञानसूयोदय नाटक'', ''पवनदूत'' आदि संस्कृत ग्रंथों के साथ ''यशोधरा चरित्र'' की भी रचना की जो अंकलेश्वर भरूच (गु.रा.) के चिंतामणि पाश्वर्वनाथ के मंदिर में. सं. 1657 में रची गई। [92]

इनकी अन्य कृतियाँ ''श्रीपाल आख्यान''[93], भरत बाहुबली छंद'', 'आराधना गीत', 'अम्बिका कथा', 'पाण्डव पुराण' हैं।

भट्टारक महीचन्द्र (सं.1651 के आसपास) :

भट्टारक महीचन्द्र भट्टारक वादिचन्द्र के शिष्य थे।[94] इनके जीवन से सम्बन्धित अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। परंतु गुरू भट्टारक वादिचन्द्र का समय सं. 1651 के आसपास का सिद्ध ही है। अतः भट्टारक महीचन्द्र का समय भी लगभग सं 1651 पश्चात् का ही ठहरना चाहिए।

इनके गुरू परंपरा में आनेवाले गुरूओं की भाँति इनका भी संबंध राजस्थान एवं गुजरात दोनों की ही गादियों में रहा होना चाहिए, इस बात का प्रमाण इनकी रचनाओं में राजस्थानी व गुजराती भाषा के प्रभाव को देखते ही बनता है।

अब तक की खोजों में इनकी तीन रचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

1) अदित्य व्रत कथा, 2) लवांकुश छप्पय, 3) नेमिनाथ समवशरण विधि ।

इनकी कृतियों की भाषा राजस्थानी डिंगल है। कृति काव्यत्वपूर्ण है। गुजराती शब्दों के प्रयोग भी प्राप्त होते हैं।

कवि की शेष रचनाओं में ''नेमिनाथ समवशरण विधि'' तथा ''आदिनाथ विनति'' कवि की लघु रचनाओं के संग्रह है।[95]

सयंम सागर (सं. 1656 आसपास) :

बारडोली के संत भट्टारक कुमुदचंद्र (सं. 1656) के शिष्य थे। ये ब्रह्मचारी थे और स्वयं अच्छे कवि भी थे। ये अपने गुरू को साहित्य निर्माण में सहयोग देते रहते थे। अपने गुरू की प्रशंसा में इन्होंने अनेक गीत, स्तवन एवं पद लिखे हैं। डॉ. कासलीवाल ने संयम सागर की 7 रचनाओं का उल्लेखन किया है।[96]

ब्रह्मगणेश (सत्रहवीं शती द्वितीय-तृतीय चरण)

भट्टारक रत्नकीर्ति (सं. 1643-1566) भट्टारक कुमुदचंद्र (सं. 1659) तथा भट्टारक अभयचन्द्र (सं. 1645 जन्म) 1685-1721 (भं. पद) इन तीनों के ही प्रिय शिष्यों में से थे। इन भट्टारकों की प्रशंसा, स्तवन एवं परिचय के रूप में इन्होंने अनेक गीत लिखे हैं। डॉ. कासलीवाल के उल्लेख अनुसार अब तक इनके 20 गीत प्राप्त हो चुके हैं।[97] इन गीतों तथा स्तवनों में कवि हृदय वरम पड़ा है। भट्टारक अभयचन्द्र के स्वागत गान में लिखा उनका एक गीत भाषा की दृष्टि से दृष्टव्य है।

आजु भले आये जन दिन धान रयणी''
शिवया नन्दन बंदी रत तुम, कनक कुसुम बधावो मृग नयनी ॥ 1॥

उज्जल गिरि पाय पूजी परमगुरू सकल संघ सहित संग सयनी ।
मृदंग बजावते गावते गुनगनी, अभयचन्द्र पटधर आयोगज गयनी ॥ 2॥

अब तुम आये भली करी, धरी धरी जय शब्द भक्ति सब कहेनी ।
ज्यों चकोरीचन्द्र कुं. इयत, कहत गणेश विशेषकर वचनी ॥ 3॥

ब्रह्मअजित (17वीं शती द्वितीय-तृतीय चरण)

ये भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य एवं विद्यानन्दि के शिष्य थे। ये संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे। भट्टारक विद्यानन्दि बलात्कारगण, सूरत शाखा के भट्टारक थे।[98] इनका मुख्य निवास भृगुकच्छ पुर (भड़ौच) का नेमिनाथ चैत्यालय था। ब्रह्मचारी अवस्था में रहते हुए इन्होंने यहीं हनुमच्चरित की रचना की। इनकी साहित्य निर्माण की कला इस कृति के अंतर्गत निहित होती है।12 सर्ग का यह काव्य अत्यंत लोकप्रिय है इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर में सुरक्षित है।

इनकी हिन्दी रचना ''हंसा गीत''[99] प्राप्त है। इसका नाम ''हंसा तिलक रास'' अथवा ''हंसा भावना'' भी है। 37 पदों में रचित यह एक लघु आध्यात्मिक तथा उपदेश प्रधान रचना है।

''ए बारद् विहि भावणइ जो भावइ दृढ़ चितु रे । हंसा

श्री मूल संधि गच्छि देसीउए बोलइ ब्रह्म अजित रे ॥ हंसा ॥ 36॥''

महानन्द गणि (सं. 1661 आसपास) :

ये तपागच्छ के अकबर बादशाह प्रतिबोधक प्रसिद्ध आचार्य हीरविजसूरि की शिष्य परम्परा में हुए विद्याहर्ष के शिष्य थे।[100] इनकी रचनाओं पर गुजराती का अत्याधिक प्रभाव देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि गुजराती ही इनकी मातृभाषा थी। संभवतः ये गुजरात के ही रहनेवाले होंगे। इनके बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती। इनके द्वारा रचित एक कृति ''अंजना सुन्दररी रास''[101] प्राप्त है।

मेघराज (सं. 1661 आसपास)

ये पार्श्वचन्द्रगच्छीय परम्परा में श्रवण कृषि के शिष्य थे। इनके संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। श्री देसाई ने इनकी गुजराती रचना का उल्लेख किया है जिससे यह सिद्ध होता है कि वे गुजराती थे। हिन्दी में इनकी छोटी-मोटी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। **यथा-पार्श्वन्द्रस्तु, सदगुरूस्तुति** तथा **संयम प्रवाह** आदि। स्वच्छ शैली एवं गुजराती हिन्दी मिश्र भाषा में आपने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है।

वयाशील (सं. 1664-67) :

इनके गुरू अचलगच्छीय धर्मसूरि की परम्परा के विजयशील थे। इनकी दो गुजराती कृतियों का तथा एक हिन्दी कृति का उल्लेख प्राप्त होता है।[102] ''चन्द्रसेन चन्द्रघेता नाटकीया प्रबन्ध ''इनकी हिन्दी कृति है। इसकी रचना भीनभाल में हुई थी।[103] यह कृति शान्तिनाथ के चरित्र के आधार पर रचित एक चरित्रकाव्य है।

''मेरी सज्जनी मुनि गुण गावु री।

चन्द्रधोत चन्द्र मुणिन्द मेरा नामइ हुइ आणन्द।

संसार जलनिधि जलह तारण, मुनिवर नाव समान ॥ मेरीद ॥ 2॥''

हीरानन्द : हीरो संघवी, गृहस्थ कवि (सं.1664-68) :

हीरानन्द एक अच्छे कवि थे। 52 अक्षरों में से प्रत्येक अक्षर पर एक-एक पद्य की रचना सहित 57 पद्यों से सुसज्ज इनकी ''आध्यात्म बावनी'' ज्ञानश्रयी कविता की प्रतिभापूर्ण हिन्दी काव्यकृति है।[104] इस काव्यकृति की रचना लाभपुर के भोजिग किशनदास शाह देणिदास के पुत्र के पठनार्थ हुई थी।[105] इसका मुख्य विषय आध्यात्म है। इनकी भाषा शैली प्रवाहपूर्ण व समर्थ है तथा कवित्व के गुणों को काव्य पठन से सराहा जा सकता है।

इनके जन्म एवं जीवनवृत्त के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती किन्तु गुजराती कृतियों अतः साक्ष्य के आधार पर इनके पिता कान्ह[106] और गुरू विजयसेन सूरि[107] सिद्ध होते हैं।

दयासागर वा दामोदर मुनि (स. 1665-69) :

इनके गुरू अचलगच्छीय धर्ममूर्तिसूरि की परम्परा के उदयसमुद्रसूरि थे।[108]

''मेदन शतक'' इनके द्वारा रचित 101 दोहे की हिन्दी रचना है, जिसका उल्लेख गुजराती की कृतियों में एक कृति ''मदनकुमार रास'' की प्रशस्ति में है। इस ग्रंथ का उल्लेख हिन्दी साहित्य के द्वितीय खण्ड में भी किया गया है। वस्तुतः यह एक प्रेम कथा है।

हेम विजय (सं. 1670 के आसपास) :

हेमविजय जी का जन्म गुजरात में ही कहीं हुआ था, ऐसा अनुमादित है। इनके जीवनवृत्त की विशेष जानकारी नहीं मिलती, ये प्रसिद्ध आचार्य हरिविजयसूरि के प्रशिष्ट और विजयसेनसूरि के शिष्य थे,[109] इनके काव्य में गुजराती का प्रयोग मिलता है साथी प्रेमी जी के इस कथन से –

''आगरा और दिल्ली की तरफ बहुत समय तक विचरण करते रहे थे''

से ज्ञात होता है कि इन्हें हिन्दी का अच्छा ज्ञान था। हिन्दी में रचित इनके उत्तम-पद प्राप्त होते हैं जिनमें हरिविजयसूरि तथा विजयसेन सूरि की स्तुतियाँ तथा तीर्थंकरों के स्तवन वर्तमान हैं। मिश्रबंधु विनोद में भी सम्वत् 1666 में इनके द्वारा बताए गए स्फुट पदों का उल्लेख प्राप्त होता है।[110] कवि ने नेमिनाथ तथा शजुल के कथा प्रसंगों को लेकर राजुल

की विरह-व्यथा को बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है –

''घनघोर घटा उनयी जु नई, इततै उततै चमकी बिजली।
पियुरे पियुरे पपिहा बिललाति जु; मोर किंगार करंति मिली।
बिच बिन्दु परे द्दग आंसु झरे, दुनि धार अपार इसी निकली॥
मुनि हेम के साहिब देखन कूं, उग्रसेन ललि सु अकेली चाली ।''

लालचन्द्र (सं. 1672-95) :

लालचन्द्र जी खरतगच्छीय जिनसिंहसूरि के शिष्य हरिनन्दन के शिष्य थे।[111] इस युग में इसी नाम के तीन और व्यक्ति हुए हैं किन्तु ये इन तीनों से पृथक मात्र लालचन्द्र नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इनकी गुजराती रचनाओं के साथ एक हिन्दी की कृति ''वैराग्य बावनी'' भी प्राप्त है जिसकी रचना सं. 1665 भाद्रशुक्ल 15 को हुई थी। आध्यात्म विचार और वैराग्यभावना इस कृति का मुख्य उद्देश्य है। कवि, संतों की सी भाषा में बोलता मिलता है। भाषा पर गुजराती प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इसकी तुलना हीरानन्द संघवी की ''आध्यात्म बावनी'' से की जा सकती है।

भद्रसेन (सं. 1674-1706) :

इनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती मात्र इतना ही सिद्ध होता है कि जब जिनराजसूरि ने शत्रुंजय पर प्रतिष्ठा की उस समय कवि भद्रसेन व गुणविनय आदि उपस्थित थे।[112] 184 पदों में रचित इनका ''चन्दन मलयागिरि चौपाई'' एक सुन्दर लोककथा काव्य है। इस कृति की लोकप्रियता का उज्ज्वल प्रमाण यह है कि उसकी असंख्य प्रतियाँ राजस्थान व गुजरात के भण्डारों में प्राप्त हैं जिसमें कुछ सचित्र भी हैं। संवत् 1775 के आसपास रचित इस कृति में भाषा सरल तथा शैली प्रसादात्मक है। इसमें कुसुमपुर के राजा चन्दन और शीलवती रानी मलयगिरि की कथा निबन्ध है।

गुणसागर सूरि (सं. 1675-91) :

गुणसागरसूरि की जीवन विषयक सामग्री प्राप्त नहीं होती। वे विजयगच्छ के पदमसागरसूरि के पट्टधर थे। इनकी गुरू परम्परा इस प्रकार है –

विजयगच्छ के विजय ऋषि-धर्मदास-खेमजी-पदमसागर[113] 'कृतपुण्य (कपवन्ना)

रास' 'स्थूलि भद्रगीत', 'शान्तिजिन', 'विनती रूपे स्तवन', 'शान्तिनाथ छन्द' तथा 'पार्श्वजिन स्तवन' आदि कवि की हिन्दी रचनायें हैं। 'कृतपुण्य रास' दान-धर्म की महिमा पर आधृत 20 ढालों से युक्त एक कृति है। 'स्थूलिभद्रगीत 12 पद्यों की विभिन्न रागों में निबद्ध एक लघु रचना है। इसी प्रकार अन्य कृतियाँ भी कवि की लघु रचनाएँ हैं व भक्ति भाव से परिपूर्ण है। भगवान के दर्शनों की महिमा बताता हुआ कवि कहता है –

''पास जी हो पास दरसण की बलि जाइये पास मन रंगै गुणगाइये।
पास बाट घाट उधान में, पास नागै संकट उपसमै। पा.
उपसमै संकट विकट काष्टक, दुरित पाप निवारणो।
आणंद रंग बिनोद वारु अषै संपित्ति कारणो।। पा.।।''

श्री रास (सं. 1681–1702) :

श्री रास की जीवन विषयक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। इनकी रचनाओं में गुजराती प्रभाव को देखते हुए यह अनुमान करना स्वाभाविक हो जाता है कि इनका संबंध गुजरात से दीर्घ काल तक रहा होगा। खरतगच्छीय उपाध्याय रत्नहर्ष तथा हेमनन्दन के श्री रास शिष्य थे।[114] इनकी 12 कृतियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[115] इनकी **मोती कपासीया संवाद** एक महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति है। इसकी भाषा गुजराती से प्रभावयुक्त सरल एवं प्रसाद गुणयुक्त है।

''मोती घरखउ महीप लइ हुं मोटो संसार
मोह तमोवडि कोई नहीं हुँ सिगलइ शिरदार ।
संप हुओ–मोती कपासीयें मिलीया माहो माहिं'' आदि ।

''अन्य कृति'' 'रास बावनी' की प्रत्येक पंक्ति में कक्काक्रम से एक-एक अक्षर को लेकर एक एक कवित रचा गया है। आरम्भ ॐ कार से हुआ है। ये दोनों हिन्दी कृतियाँ विशेष उल्लेख्य है।

बालचन्द : (सं. 1685 के आसपास)

कवि बालचन्द्र लोंकगच्छीय परम्परा में गंगादास मुनि के शिष्य थे। [116] ज्ञानाश्रयी कविता के उज्जवल प्रमाणस्वरूप 33 पद्यों से पूर्ण तथा भावनगर के जैन प्रकाश में प्रकाशित

बालचन्द्र बत्तीसी के आधार पर उनका गुजराती होना सिद्ध होता है। इनकी भाषा सरल व प्रभावपूर्ण है।

''सकल पातिक हर, विमलप केवल धर,
जाको वासो शिवपुर तासु लय लाइए।
नाद बिंद रुपरंग, पाणिपाद उतभंग,
आदि अन्त मध्य भंगा जाकूँ नहि पाइए ॥ आदि॥''

ज्ञानानंद (17 वीं शती)

इनके जीवनवृत विषयक प्राप्त सामग्री का अभाव है। इनके पदों में 'निधिचरित' का नाम श्रद्धा के साथ व्यक्त हुआ है उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संभवतः निधिचरित आपके गुरू रहे होंगे । पंडित बेचार दास ने इनका 17वीं शती में होना माना है [117] डॉ. अम्बाशंकर नागर ने इनकी भाषा में गुजराती प्रभाव को देखकर इनके गुजराती होने का या गुजरात में दीर्घकाल तक रहने का अनुमान लगाया है [118] संतो कीसी इनकी भाषामें सरल, सजीव,गांभिर्य है तथा अभिव्यकित में असाम्प्रदायिक शुद्ध ज्ञान, मुखर हो उठा है। इस कारण इनका पद-साहित्य भारतव्यापी संत परम्परा का प्रतीक है।

हंसराज : (17 वीं शती उत्तरार्ध्द)

हंसराज खरतगच्छीय वर्द्धमानसूरि के शिष्य थे। [119] इनके संबंध में भी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। श्री मो. द. देसाई ने इन्हें 17 वीं शती का कवि माना है। [120] 'ज्ञानबावनी' भक्ति एवं वैराग्य के भावों से परिपूर्ण 52 पद्यों में रचित सुन्दर कृति है। यह एक हिन्दी रचना है। जिसकी प्रतियाँ गुजरात और राजस्थान के अनेक भण्डारों में प्राप्त होती हैं जो इस कृति की लोकप्रियता के साथ इस बात से भी प्रमाणित करती है कि कवि का गुजरात से दीर्घकालीन संबंध रहा है। इस रचना में से कुछ पंक्तियाँ यहा दृष्टव्य है -

''ओंकार रूप ध्येय गेय है न कछू जानै
पर परतत मत मत छहुं मांहि गायो है।
जाको भेद पावै स्यादवादी और कहो
जौने मानै जातै आपा पर उरझायो है।'' आदि-1

ऋषभदास (श्रावक कवि) : 17 वीं शती का उत्तरार्ध

खंभात के प्रसिद्ध श्रावक कवि ऋषभदास के गुरू तपागच्छीय आचार्य विजयानंदसूरि थे।[121] ये धर्म संस्कारी बहुश्रृत एवं शास्त्राभ्यासी विद्वान श्रावक थे। ये गुजराती भाषा के प्रेमानन्द और अखा की कोटि के कवि थे। श्री मो.द. देसाई ने इनकी 43 रचनाओं का उल्लेख किया है।[122]

हिन्दी के वीरकाव्यों में इनके **'कुमारपाल रास'**[123] तथा इसके अतिरिक्त **'श्रेणिक रास'**, **'रोहिणी रास'** का उल्लेख भी हुआ है।[124] इनका अधिकतर साहित्य अप्रकाशित है। कुछ कृतियों का तो कवि की विभिन्न कृतियों में उल्लेख मात्र ही मिलता है।

कवि की विभिन्न कृतियों के अवलोकन से देश्य भाषा का प्राचीन रूप तथा हिन्दी का विकसित रूप स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रसंगानुकूल और भावानुकूल भाषा संयोजन की उत्तम कला इसमें दिखाई देती है। इनके अनेक हिन्दी-उर्दूनिष्ठ प्रसंग कवि की विभिन्न रचनाओं में विशेषतः 'हीरविजयसूरि रास' में प्राप्त होते हैं। उर्दूनिष्ठ कविता का एक और उदाहरण अवलोकनीय है –

'या खुदा मिंबडा दोज़खी, कीनी बोहोत बुजगारी।
इस कारणी थी बीहस्त न पाऊँ, होइगी बेहोत खोआरी ॥66॥'

कनक कीर्ति : 17वीं शती का अन्तिम चरण

खरतगच्छीय प्रसिद्ध आचार्य जिनचन्द्रसूरि की परम्परा में जयमंदिर के शिष्य[125] कनक कीर्ति का कोई जीवनवृत उपलब्ध नहीं होता। इनकी काव्य कृतियाँ हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में रची गई प्राप्त होती हैं। इनकी हिन्दी कृतियों में गीत, स्तुति, वंदना, सज्झाएँ आदि हैं। ये सब किसी ऋषि की या भगवान की स्तुति अथवा वंदना में रचित कृतियाँ है। **भरतचन्दी सज्झ्या**, भक्तिकाव्य, **'मेघकुमार गीत'** (वंदना) **जिनराज स्तुति, विनती, श्रीपाल स्तुति, कर्मघटावली, भक्ति काव्य** तथा स्फुट भक्ति पद है।[126]

इनकी भाषा के अनेक रूप प्राप्त होते हैं, यथा ढूँढारी से प्रभावित (जहाँ 'हे' के स्थान पर 'छै', का प्रयोग) गुजराती से प्रभावित मारवाडी, व्रज के समीप तथा खड़ी बोली। खड़ी बोली का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''तुम प्रभु दीनदयालु, मुझ दुषि दुरि करोजी
लीजै अनंवन ही तुम ध्यान धरों जी ।''

18 वीं सदी के जैन गूर्जर कवि :

आनन्दघन (सं. 1680-1745) :

आनन्दघन श्वेताम्बर जैन कवि थे।[127] इनके जन्म आदि के विषय में साहित्य जगत में अनेक तर्क चर्चित हैं, किन्तु उनके समकालीन कवि यशोविजय से इनका साक्षातकार होना तथा आनन्दघन से प्रभावित होकर यशोविजय का इनकी प्रशंसा में ''अष्टपदी''[128] की रचना करना, इन दोनों तथ्यों के आधार पर तथा यशोविजय की मृत्यु-पश्चात् उनकी समाधि पर अंकित संवत 1745 आदि उपलब्ध सामग्री को ध्यान में रखकर ही शायद इनके जन्म संवत 1670 से 80 के बीच अनुमानित किया है।[129] साथ ही आनन्दघन का जन्म बुन्देलखण्ड के किसी नगर में हुआ था और मेडता नगर के आसपास दीर्घकाल तक निवास करना भी ज्ञान होता है।[130]

इनकी प्रथम कृति ''आनन्द चौबीसी'' का रचना स्थल गुजरात है इस तथ्य से इनका गुजराती होना तथा गुजरात में दीर्घ समय तक रहना सिद्ध होता है।

इनके सृजन-साहित्य में प्रमुख दो रचनाएँ उपलब्ध होती है। ''आनन्द चौबीसी'' जो एक गुजराती रचना है तथा ''आनन्द बहोतरी'' जो हिन्दी भाषा में रचित है। इनकी रचनाओं में विस्तृती नहीं किन्तु गहराई ध्यातव्य होती है। काव्यगत शैली में कवि के अथाह ज्ञान और अपूर्व शैली के दर्शन होते हैं।

इनकी रचनाओं में साम्प्रदायनिरपेक्ष ब्रह्मानुभूति का बोध होता है। आनंदघन में संतों के-से अभेद भाव की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर हुई है। इनके काव्य में राम-रहमान, कृष्ण महादेव पारसनाथ आदि अद्वैत रूप में प्रतिष्ठित है, नाम भेद होते हुए भी सभी एक हैं, बह्म एक हैं –

''राम कहो रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री,
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्म, सकल ब्रह्म स्वयमेव री।
भाजन भेद कहावत नानो एक मृतिका रूप री,

तैसे खण्ड कल्पना रोपित आप अखण्ड सरूप री।
निज पद रमे राम सो कहिए, रहम कहे रहमान री;
कर्षे करम कान सो कहिए, महादेव निर्वाण री।
परसे रूप पारस सो कहिए, बह्म चिह्नों से ब्रह्म री
इहि बिधि साधो आप आनंदघन, चेतनमय निष्कर्म री ;''

इनके काव्य में एक ओर वैष्णवी प्रपति के दर्शन होते हैं और वहीं कबीर का-सा ज्ञान भी दिखाई देता है।

अवधूत ऐसो ज्ञान विचारी वामे कोण पुरुष कोण नारी ।
बम्मन के घरन्हाती धोती, जोगी के घर चेली ।
कलमा पढ़ पढ़ भई तुरकड़ी तो, आप ही आप अकेली ॥ आदि

इस प्रकार देखने से यह तथ्य सिद्ध होता है कि आनन्दघन जी कबीर की भाँति ज्ञानवादी व रहस्यवादी कवि थे।

इनकी रचनाओं में ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य की त्रिवेणी का संगम दृष्टिगोचर हुआ है। इनकी भाषा ब्रजभाषा, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी आदि भाषाओं के प्रभाव के कारण सधुक्कड़ी हो गई है। उनका छन्द-विधान विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध है। ये सभी त्रिताल, एक ताल और धमार आदि तालों पर निबद्ध है। इस प्रकार इन्होंने ब्रज और मारवाड़ी में अत्यंत भावपूर्ण एवं संगीतात्मक पदों की रचना की है।

यशोविजयजी उपाध्याय (सं. 1680-1743) :

यशोविजयजी के समकालीन मुनीवर कान्तिविजय जी की गुजराती काव्यकृति 'सुजस वेलिभास' तथा महाराजा कर्णदेव (वि. सं.1740) के ताम्रपत्र के आधार पर इनका जन्म गुजरात में पाटण के पास कनौड़ा गांव में सं. 1670 से 1680 के बीच में हुआ था ऐसा अनुमानित है। माता सौभाग्य देवी तथा पिता नारायण की धर्म परायणता, उदारता, तथा दानशील संस्कारों का ओज यशोविजयजी के व्यक्तित्व में सहज ही दृष्टिगोचर होता है।

इनके अध्ययन का कार्य आगरा और काशी में सम्पन्न हुआ। इन्हें षोडशदर्शन, तर्कशास्त्र व जैन-न्याय में विद्वता प्राप्त कर एक सन्यासी को शास्त्रार्थ में पराजित करके

न्याय प्रिशारद की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार इनकी प्रतिभा, विद्वता, अध्ययन की गहराई को देखते हुए इन्हें जैन समाज का दूसरा महावीर कहना तर्कसंगत होगा।

इनकी 300 रचनाओं में से 5-6 रचनाएँ तथा कुछ स्फुट पद हिन्दी में मिलते हैं। शेष रचनाएँ संस्कृत, प्राकृत, गुजराती में लिखी गई हैं। आनन्दघन की प्रशंसा में लिखी गई **'आनन्दघन अष्टपदी', 'दिक्पट चौरासी बोल,' 'समाधि शतक,' 'समता शतक'** तथा **'भक्ति वैराग्य'** और **'विश्व प्रेम'** के 100 पदों, स्तवन, गीत एवं स्तुतियों का संकलन 'जसविलास' में किया गया है। यशोविजयजी की वाणी प्रभावोत्पादक है। इनकी भाषा प्रसादगुण युक्त, शैली सरस तथा छंद विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध है।

ज्ञानविमलसूरि (सं. 1694 जन्म -1682 मृत्यु) :

सं. 1684 ओसवालवंश भिन्नमाल[131] में जन्में 'नाथुमल्ल' (बाल्यकाल का नाम) के पिता वासव श्रेष्ठि तथा माता कनकावती थीं। सं. 1702 में इन्होंने (ज्ञानविमलसूरि ने) तपगच्छीय विनयविमल के शिष्य धीरविमय से दीक्षा प्राप्त की तत्पश्चात् इनका दीक्षा नाम 'नयविमल' पड़ा। काव्य, तर्क, न्याय शास्त्रादि के साथ संगीतशास्त्र में भी निपुणता साध्य की थी इनकी विविध विषयों में विद्वता एवं उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर सं. 1727 में श्री विजयप्रेमसूरि ने इन्हें सादड़ी (मारवाड़) के निकटवर्ती ग्राम धाणेराव में पंडित पद से सम्मानित किया। इनकी योग्यता और दक्षता दिन-प्रतिदिन वेगमान होती गई। अपने गुरू के स्वर्गवास पश्चात् वे सं. 1747 में पाटण आये और यहाँ पर इन्हें सवत् 1748 में श्री महिमासागर द्वारा संडेसर (संडेर) ग्राम में आचार्य पद पर विभूषित किया गया। तत्पश्चात नयविमल ज्ञानविमलसूरि से प्रसिद्ध हुए ।

इन्होंने प्रायः श्री महोपाध्याय विनय विजयजी यशोविजयजी तथा प. ऋद्धिविमलगणि आदि के साथ सूरत, खंभात, राजनगर, पाटण, राधवपुर सादडी, धाणेराव, सिरोही, पालीताणा, जूनागढ़ आदि में भ्रमण किया । सिद्धांचल की अनेक बार यात्रा की और साधुओं को दीक्षा देकर उन्हें वाचक पद और पंडितपद से विभूषित किया ।

ज्ञानविमलसूरि संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और गुजराती भाषा के ज्ञाता थे, इन सभी भाषाओं में लिखे गये काव्यों में रासादिक ग्रंथ तथा हिन्दी भाषा की मुक्तक रचनाएँ स्तवत गीत, सज्झाया पद आदि विपुल संख्या में उपलब्ध होते हैं।

इनकी समस्त हिन्दी रचनाएँ प्राचीन स्तवन रत्न संग्रह भाग-1 और 2 में संग्रहीत हैं। इनकी एक हिन्दी रचना 'कल्याण मन्दिर स्त्रोत गीत'[132] भी है। साथ ही इनकी गद्य रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। वे एक सफल कवि, भक्त, आध्यात्म तत्व विवेचक, पउदेशक तथा सिद्ध हस्त गद्यकार थे।

इनकी भाषा पर गजुराती का अधिक प्रभाव जान पड़ता है। इनकी विभिन्न मुक्तक कृतियाँ भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से बड़ी समृद्ध एवं हिन्दी की उत्तम कृतियों में स्थान पाने योग्य है।

खंभात में 89 वर्ष की आयु पूरी कर सं. 1782 अश्विन सूदी 4, गुरूवार की प्रातः अनशन पूर्वक इन्होंने अपनी इहलीला सवरण की।

धर्मवर्धन (सं. 1700 जन्म 1783-84 मृत्यु) :

धर्मवर्धन के गुरू विजयहर्ष थे, जो खरतगच्छीय विजन भद्रसूरि शाखा में विध्यमान थे।[133] अपनी प्रथम कृति की[134] रचना के समय इनकी आयु 19 वर्ष थी। इससे इनका जन्म संवत 1700 सिद्ध होता है। 13 वर्ष की अल्पायु में इन्होंने खरतगच्छाचार्य श्री जिनरत्नसूरि से दीक्षा ग्रहण की तथा शास्त्रों एवं भाषाओं का ज्ञान उन्होंने विद्यागुरू विजयहर्ष से प्राप्त कर विद्वता सिद्ध की। अपनी इन्हीं योग्यताओं एवं प्रतिभाओं के कारण वे उपाध्याय और महोपाध्याय के स्थान पर नियुक्त किये गये ।

इनके द्वारा रचित राजस्थानी एवं गुजराती रचनाओं का रचना स्थल गुजरात है[135] तथा गुजरात में विभिन्न स्थलों में भ्रमण एवं धर्मप्रचार की बात भी पुष्ट होती है। उपर्युक्त सभी अतः साक्ष्यों के आधार पर उनका गुजरात से दीर्घकालीन संबंध सिद्ध होता है।

अनेक विषयों के ज्ञाता, बहुभाषाविद एवं समर्थ विद्वान कवि धर्मवर्धन की शिष्य परंपरा विस्तृत दीर्घ थी । लगभग 19वीं शती तक इनकी शिष्य परम्परा चलती रही[136] संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में भी इनकी उच्चकोटि की रचनाएँ मिलती हैं। कवि की अधिकांश हिन्दी कृतियाँ (राजस्थानी, डिंगल, पिंगल कृतियाँ) प्रकाशित हो चुकी हैं।[137] डिंगल-गीत अपनी वर्णन शैली एवं अपनी स्वतंत्र छन्द रचना के कारण भारतीय साहित्य में विशष्ट स्थान प्राप्त किये हुए है। कवि धर्मवर्धन के भी डिंगल गीत अपने अर्थ-गांभीर्य के

कारण अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन गीतों के विषय मात्र युद्धवर्णन या विरदगान तक ही सीमित नहीं, इनमें देवस्तुति, प्रकृतिवर्णन निर्वेद एवं राष्ट्रीयता आदि का भी सम्यक निर्देशन हुआ है। ऐसे गीतों में प्रासादिकता कवि की अपनी विशेषता है।

इनके द्वारा रचित कुल 265 रचनाएँ धर्मवर्धन ग्रंथावली में प्रकाशित हैं। इनकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी गुजरात तथा राजस्थान के अनेक शास्त्र भण्डारों में सुरक्षित है। डॉ. शुक्ल के अनुसार कवि द्वारा प्रणीत 'धर्मवर्धन बावनी', 'कुंडलिया बावनी', 'छप्पय बावनी' आदि बावनियाँ नीति उपदेश एवं सरल संतोचित असाम्प्रदायिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से विशेष महत्व की है।[138] धर्मवर्धन बावनी से एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

''चाहत अनेक चित्त, पाले नहीं पूरी प्रीत;
केते ही करै है मीत, सोदौ जैसे हाट को।
छोरि जगदीस देव, सारें ओर ही की सेबु;
एक ठोर ना रहे, ज्युं मोगल–कपाट को''[139]

कवि के औपदेशिक पद एवं मुक्तक स्तवन अनेक राग-रागिनियों में निबद्ध संगीत शास्त्र के अनुकूल हैं।

लोकगीतों के क्षेत्र में भी कवि ने प्रशंसनीय कार्य किया। इनकी धुनों की आद्यपंक्तियाँ लोकप्रिय और प्रचलित हो गई हैं। कवि ने चित्रकाव्य और काव्य भी लिखे हैं। इनमें प्रसंगीद्भावना एवं कल्पना शक्ति के दर्शन होते हैं। इन्होंने तत्काल प्रचलित सभी काव्य शैली को अपनाया है। इनका व्यक्तित्व सद्धर्म-प्रचारक, भक्त, सरल उपदेशक, समर्थ विद्वान एवं सरस कवि के रूप में अपनी कृतियों में प्रतिबिम्बित है।

सं. 1783-84 में कवि ने यशस्वी दीर्ध जीवन यापन कर अपनी इहलीला संवरण की।[140]

आनन्दवर्धन (सं. 1702–1712) :

प्रतिभा सम्पन्न आनन्दवर्धन के जीवनवृत के बारे में उपलब्ध जानकारी का अभाव है। ये खरतगच्छीय महिमासागर के शिष्य थे इन्होंने गुजराती, गुजराती मिश्रित हिन्दी तथा राजस्थानी भाषा में अपनी लेखनी चलाई है। **''अर्हन्नक रास''** (सं. 1702-गुजराती अपनी

रचना) **''चौवीसी''** (सं. 1712 गुजराती मिश्रित हिन्दी रचना) इन दोनों कृतियों का उल्लेख मो. द. देसाई ने किया है।[141] इसके अतिरिक्त **'अन्तरीक स्तवन', 'बिमलगिरी स्तवन' 'कल्याण मंदिर ध्रुपद'**, और **'भक्तांभर सवैया'** अदि इनकी राजस्थानी कृतियों का उल्लेख श्री नाहटा जी ने ''परम्परा'' राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल में किया है।[142]

उपर्युक्त जानकारी के आधार पर उनकी गुजरात एवं राजस्थान से घनिष्टता पुष्ट होती है। इनकी हिन्दी राजस्थानी रचनाओं पर गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इससे इनका जन्म गुजरात में ही कहीं हुआ होगा ऐसा अनुमानित किया गया है। गुजराती में इनके द्वारा रचित ''अंतरिक्ष पार्श्वनाथ स्तवन'' प्राप्त हैं।[143]

इनकी ''चौवीसी''[144] कृति का विषय उपदेश, भक्ति वैराग्य है। यह कृति विभिन्न राग रागिनियों में निबद्ध है। इनकी अन्य कृतियों के विषय भी प्रभु-भक्ति सबंधित है। भक्तांभर से एक उदाहरण यहा उदघृत है-

''सै अकुले कुल मच्छ जहां गरजै दरिया अति भीम मथौ है,
ओ वडवानल जा जुलमान जलै जल मै जल पान क्यों है ।
लोल उतंराकलोलनि कै पर वरि जिहा उच्छरि दयो है,
ऐसे तुफान मैं तौहि जपै तजि में सुख सौ शिवधान लयो है'' ॥ 140॥

केशर कुशल (सं. 1706 आसपास) :

केशर कुशल के गुरू सौभाग्य कुशल के शिष्य थे। जो तपगच्छीय वीरकुशल के शिष्य थे।[145] इनके जीवनवृत्त आदि के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती।

सं. 1706 श्रावण मास में सांतलपुर में रचित 26 पद्य की ऐतिहासिक गुजराती कृति 'जगडु प्रबंध चौपाई' है।[146] तथा तीर्थंकरों की स्तुति में रची गई सरल एवं भाववाही हिन्दी कृति ''वीसी'' प्राप्त है।[147] एक उदाहरण प्रस्तुत है –

''सीमंधर जिनराज सुहंकर, लागा तुमसुं नेहावो।
सलूने सांइ दिल सौ दरसन देह ॥
तुम हीं हमारे मनके मोहन, जारे परम सनेहा वो 1-1 सलूने''

इनकी भाषा गुजराती से प्रभावित है।

हेमसागर (सं. 1706 के आसपास) :

आप अंचलगच्छीय कल्पना सागर सूरि के शिष्य थे।[148] इनके इतिवृत्त के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती। सं. 1706[149] में सूरत के समीप हंसपुर (गुजरात) में रचित[150] हिन्दी कृति ''छन्द मालिका'' एक छन्द ग्रंथ है। जिसमें 194 पद्य हैं। इसके अंतर्गत गुजराती का अत्याधिक प्रयोगों को देखते हुए कवि का गुजराती होने का अनुमान किया जा सकता है। इसकी प्रतियाँ कई भण्डारों में सुरक्षित है। भाषा शैली की दृष्टि से एक उदाहरण पर्याप्त है –

''अलस लख्यौ काहुन परै, सब विधि करन प्रवीन॥
हेम सुमति वंदित चरन, घट घट अंतर लीन॥1॥''

वृद्धिविजयजी (सं. 1712-30) :

विविक्षित वृद्धिविजय प्रथम रत्न विजय और सत्य विजय के शिष्य हैं। इनके इतिवृत से सम्बन्धित कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

इनके द्वारा रचित 4 गुजराती कृतिओं का मात्र उल्लेख प्राप्त है।[151]

गुजराती मिश्रित हिन्दी कृति **'चौवीसी'** की रचना सं.1730 में औरंगाबाद में हुई।[152] जिसके अंतर्गत कवि की भक्ति एवं वैराग्य दशा की सरल अभिव्यक्ति है। लोकगीतों की विभिन्न देशियों मे ढले चौबीसी के स्तवन अति सुंदर एवं मर्मस्पर्शी हैं। कवि किस व्यग्रता से प्रभु को दर्शन देने की विनती करता है –

शांति जिणेसर साहिदो रे, वसियो मन मां आई,
वीसायो नवि वीसरई रे, जो वरिसों सो थाई ॥1॥

रात दिवस सूतां जागता रे दिलथी दूर न होय
अंतर जामी आपणो रे, तिलक समो तिहु लोय ॥2॥

जिनहर्ष (सं.1713-1738) :

जिनहर्ष खरतगच्छ के आचार्य जिनचन्द्रसूरि की परम्परा में मुनि शांतिहर्ष के शिष्य थे।[153] इनके जीवनवृत्त के बार में प्राप्त सामग्री का अभाव है। इनके जन्मकाल (जन्म संवत्) तथा जन्म स्थल को लेकर विद्वानों में मतभेद है। सं.1704 में रचित जिनहर्ष की प्रथम रचना

चन्दना मलयागिरि चौपाई के आधार पर अगरचन्द्र नाहटा ने जिनहर्ष ग्रंथावली में सं.1685 के आसपास इनका जन्म अनुमानित किया है तथा इनके दीक्षा ग्रहण का समय सं. 1675-1699 संभवित बताया है। वे जिनहर्ष की जन्मभूमि मारवाड़ को मानते हैं[154] तथा नाथुराम प्रेमी इन्हें पाटण निवासी बताते हैं।[155] अतः इनकी रचनाओं के आधार पर इनके जन्म स्थल की अधिक जानकारी नहीं मिलती किन्तु इसी के आधार पर इनका गुजरात एवं राजस्थान से घनिष्ठ संबंध होना पुष्ट होता है।

वे कवि के साथ-साथ लोक सेवक भी थे, शायद यही कारण है कि उनकी कृतियों का मुख्य लक्ष्य जनकल्याण प्रतीत होता है।

इनकी कृतियों की भाषा प्रसादगुण सम्पन्न, परिमाजित एवं सुललित है तथा रसात्मकता एवं माधुर्य इनकी भाषा के विशेष गुण है।

इनकी प्रमुख कृतियाँ **'नन्द बहोतरी' 'जसराज बावनी', 'चौवीसी', 'उपदेश छतीसी', 'दोहा मातृका बावनी', 'नेंमिबारहमास', 'नेमि-राजमती बारहमास** है तथा अन्य रचनाओं में **'सिध्धचक्र स्तदन', 'पार्श्वनाथ नीसाणी', 'ऋषिदता चौपाई'** तथा **'मंगल गीत'** उल्लेखनीय हैं।

देवीविजय (सं. 1716-1760) :

ये उदयविजय के शिष्य तथा तपगच्छीय विजयसिंहसूरि के प्रशिष्य थे।[156] इनकी इतिवृत के बारे में अधिक प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। सं.1713 खंभात में रची गई इनकी गुजराती कृति **'विजयदेवसूरि निर्वाण'** एक एतिहासिक कृति है। इनकी अन्य गुजराती कृति **चम्पक रास** की रचना सं. 1734 श्रावण सुदी 13 को घाणेराव में हुई थी जिसका उल्लेख श्री देसाई ने जैन गूर्जर कवियों भाग-2 में किया है।[157] सं.1730 पौस सुदी 13 के दिन बिनिर्मित देवीविजयजी के हिन्दी कृति भक्तमर स्त्रोत रागमाला काव्य प्राप्त होती है।[158] जिसमें 44 पद्य हैं। प्रारंभ में कवि जिन वंदना करता हुआ कहता है –

''भक्त अमर गन प्रणत मुगट मणि,
उल्लसत प्रभाएँ न ताकूं दूति देत है। भ.1

पाप तिमिर हरे सकृत संचय करें,

जिनपद जूगवर, नीके प्रनमेतु है। भ.2''

भट्टारक शुभचन्द्र (द्वितीय) : सं. 1721-1745)

भट्टारक शुभचन्द्र का जन्मस्थल 'जलसेन' नगर था जो उस समय जैन-समाज का प्रमुख केन्द्र था।[159] इनके पिता का नाम 'हरी' तथा माता का नाम 'माणकदे' था। इनका पूर्वावस्था का नाम 'नवलराम' था। बाल्यकाल से ही कुशाग्रबुद्धि, अप्रतिम प्रतिभा वाले नवलराम ने अल्पायु में ही व्याकरण, न्याय, पुराण, छन्दशास्त्र अष्ट सहस्त्री तथा चारों वेदों में दक्षता प्राप्त कर विद्वता सिद्ध की।[160] अपने इन्हीं गुणों के कारण गुरू भट्टारक अभयचन्द्र के पश्चात् सं. 1721 की ज्येष्ठ सुदी प्रतिपदा को पोरबंदर में एक विशेष उत्सव का आयोजन कर, भट्टारक गादी पर सम्मानित किये गये।[161] और संवत् 1745 तक इस पद को भट्टारक रूप में सुशोभित किया।

भट्टारक शुभचन्द्र अपने गुरू भट्टारक अभयचन्द्र से अधिक प्रभावित होने के कारण आजन्म साधु जीवन स्वीकार कर लिया।

पूर्ण युवा 'शुभचन्द्र भट्टारक बनते ही समाज में विचरित अज्ञानान्धकार को दूर करने हेतु गुजरात और राजस्थान के विभिन्न स्थलों में भ्रमण कर अपने प्रवचनों द्वारा जन साधारण के नैतिक, सामाजिक, एवं राष्ट्रीय विकास का अपना जीवन लक्ष्य निर्धारित किया। साहित्य सृजन एवं सांस्कृतिक कार्यों में विशेष रुचि दिखाई।

इनकी शिष्य परम्परा के प्रमुख शिष्य श्रीपाल, विद्यासागर, जयसागर आदि प्रमुख थे। इन्होंने शुभचन्द्र की प्रशंसा में अनेक गीतों की रचना की। श्रीपाल रचित ऐसे अनेक पद प्राप्त होते हैं जो साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। इनकी कोई बड़ी कृति प्राप्त नहीं होती किन्तु इनके द्वारा रचित पद साहित्य उपलब्ध होता है। जिसके अंतर्गत इनकी साहित्याभिरुचि का प्रमाण मिल जाता है। इन पदों में कवि के हृदय की मार्मिक भावाभिव्यक्ति हुई है।

भट्टारक शुभचंन्द्र के पदों में भक्तिरस प्रधान है। भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से पदों में साहित्यिकता है।

लक्ष्मीवल्लभ (18वीं शताब्दी का दूसरा पाद) :

लक्ष्मीवल्लभ की गणना 18वीं शती के उच्चकोटि के कवियों में की जाती है। गणना ये लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य थे जो खरतगच्छीय शाखा के उपाध्याय थे।[162] **'अमरकुमार चरित्र रास'** में लक्ष्मीकीर्ति के लिए 'वाणरसी लखमी-किरति गणी' लिखा गया।[163] इससे इनका बनारस निवासी होना स्पष्ट होता है। अपने गुरू के चरण कमलों में इन्होंने अपनी शिक्षा दीक्षा आरम्भ की थी। इनका पूर्वावस्था का नाम हेमराज था। इन्हें राज कवि की उपाधि से सम्मानित किया गया था।[164]

इनके जन्म दीक्षाकाल मृत्यु आदि के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। किन्तु इनके साहित्य सृजन की प्रवृत्ति का विपुल भण्डार प्राप्त है। गुजराती, हिन्दी, राजस्थानी एवं संस्कृत इन चारों भाषाओं के लक्ष्मीवल्लभ ज्ञाता थे। और इन भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। संस्कृत में विनिर्मित उनके साहित्य से सिद्ध है कि वे उच्चकोटि के विद्वान तथा कवि थे। **'कल्पसूत्र'** और **'उत्तराध्ययन'** की कृतियाँ लिखने वाला कोई साधारण विद्वान नहीं हो सकता।

कवि की हिन्दी रचनाओं पर गुजराती का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है। भाषा परिमार्जित संस्कृत-तत्सम शब्द बहुला है। गुजराती राजस्थानी में इनके कई रास स्तवनादि प्राप्त हैं। इनकी निम्न हिन्दी रचनाएं प्राप्त हैं –

1) चौवीसी 25 पद
2) महावीर गौतम स्वामी छन्द 96 पद्य
3) दोहा बावनी
4) काव्यज्ञान-पद्यानुवाद
5) सवैया बावनी
6) भावना विलास
7) नेमिराजुल बारहमासा
8) नवरत्न चौपाई
9) उपदेश बत्तीसी
10) चेतन बत्तीसी

11) देशान्तरी छन्द, तथा

12) अध्यात्म फाग

इनके अतिरिक्त 'राजबावनी' सं 1768, 'जिनस्तवन' 24 'सवैया' तथा कुछ फुटकर पद्यादि प्राप्त हैं जिसका उल्लेख हिन्दी साहित्य (द्वितीय खंड) में हुआ है।[165] 'अभ्यंकर श्रीमती चौपाई', 'रत्नहास चौपाई', 'अमरकुमार रास', 'विक्रमपंचदंड चौपाई', 'रात्रि भोजन चौपाई', 'कवित्व बावनी', 'छप्पय बावनी', 'भरत बाहुबली मिडाल छन्द', 'कुण्डलिया', श्री जिनकुशलसूरि छंद, बीकानेर चौवीसठा-स्तवन, 'शतक त्र्यठबा और स्तवनादि' फुटकर कृतियों का उल्लेख नाहटाजी ने किया है।

श्री मोहनलाल दलिचन्द देसाई ने इस कवि की छोटी बड़ी कुल मिलाकर करीब 20 कृतियों का उल्लेख किया है। [166]

हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी एवं संस्कृत में इनके विपुल साहित्य सृजन को देखकर इनकी असाधारण प्रतिभा परिलक्षित होती है।

लक्ष्मीवल्लभ की सं. 1714 से 1747 तक की रचित रचनाएँ प्राप्त हैं। अतः उनके साहित्य का निर्माणकाल 18वीं शती का दूसरा पाद ही माना जा सकता है।

श्री न्याय सागरजी (सं. 1728-1797) :

सं. 1728 श्रावण शुक्ल 8 को मारवाड़ के भिन्नाल मरुघर गांव में ओसवाल जाति के शाह मोटा और रूपा के यहाँ इनका जन्म हुआ था।[167] इनका जन्म नाम नेमिदास था। इनका आर्विभाव तपगच्छ की साषगर शाखा में हुआ था। इन्होंने अपने गुरू श्री उत्तम सागर मुनि के पास से दीक्षा ग्रहण की थी, केशरयाजी तीर्थ में दिगम्बर नरेन्द्रकीर्ति के साथ वाद-विवाद में विजय प्राप्त की। इनकी गुरू परम्परा इस प्रकार बताई गई है। धर्मसागर, विमलसागर, पद्मसागर, उत्तम सागर, न्याय सागर[168] इनकी प्राप्त 6 रचनाओं का रचना स्थल भरुच, सूरत और रानेर आदि है। इन्होंने दो चौबीसियों की रचना की है। इसकी भाषा सरल है। विभिन्न राग एवं देशियों में इनके रचे स्तवन भी मिलते हैं।

इनकी चौवीसी 1 और वीसी-2 के अधिकांश स्तवन हिन्दी में रचे है। इन स्तवनों में कविका भक्त हृदय अंकित हो उठा है।

''साहिब कब मिले ससनेही, प्यारा हो, साहिब

काचा कामिनि जीउसें न्यारा, ऐसा करत विचार हो। सा. 1

सुन सांइ जब आन मिलावे, नव हम मोहनगारा हो। सा.2

में तो तुमारी खिजमतगारी, झूठ नहिं जे भारा हो। सा. 3''[169]

भक्त हृदय का दैन्य और गुणानुराय अपनी सरल एवं संगीतात्मक शैली में मुखर हो उठा है। कवि संगीत के तो गहरे अभ्यासी प्रतीत होते हैं। इन्होंने 'महावीर राग माला' की रचना छत्तीस रागों में की है। चौवीसी के स्तवन बड़े ही सरल, सरस एवं भाववाही हैं। सं.1797 में अहमदाबाद की लुहार की पोल में इन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।[170]

विनयविजय (सं. 1738 तक वर्तमान) :

विनयविजय तपागच्छ के श्री हीरविजयसूरि की परम्परा में उपाध्याय श्री कीर्ति विजयजी के शिष्य थे। कीर्ति विजयजी विरमगाम के रहनेवाले थे।[171]

गुजरात निवासी जैन कवि विनयविजय यशोविजय के समकालीन थे। इन्होनें काशी में साथ रहकर विद्याध्ययन किया था।[172]

इनका (विनयविजय) का जन्म सं.1660-65 के आसपास अनुमानित है।[173] तथा निधन सम्वत् 1738 बताया है।[174] इनके जन्म स्थान एवं प्रारंम्भिक जीवनवृत्त के विषय में पुरी जानकारी उपलब्ध नहीं होती इनके पिता तेजपाल तथा माता राजश्री थी। इनकी दीक्षा सं. 1680 के आसपास हुई थी।

ये संस्कृत, हिन्दी और गुजराती के प्रसिद्ध ग्रंथकार और सुकवि थे। न्याय और साहित्य में इनकी समानगति थी। इनका एक 'नयकर्णिका' नामक दर्शन ग्रंथ अंग्रेजी टीका सहित छप चुका है। उपाध्याय यशोविजय तथा आनन्दघन के समकालीन साहित्य प्रेमी, आगम, अभ्यासी, समर्थ विद्वान तथा प्रसिद्ध 'कल्पसूत्र सुबोधिका' के कर्ता रूप में विनयविजय ने संस्कृत तथा गुजराती में विपुल साहित्य की रचना की।

इनका 'श्रीपाल रास'[175] अतिप्रसिद्ध लोकप्रिय और अन्तिम ग्रंथ है, जिसे श्री यशोविजय ने पूर्ण किया । इसकी भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। इनके हिन्दी पदों का संग्रह 'विनय-विलास' नाम से प्रकाशित है। इसमें कुल 37 पद संग्रहीत है यह कृति भाषा,

भाव, शैली की दृष्टि से उत्तम कृति है।

इनके विविध भाषाओं में लिखित अन्य ग्रंथ भी उपलब्ध हैं। काशी में निवास करने के कारण उन्होंने हिन्दी में समुचित योग्यता एवं भाषधिकार प्राप्त कर लिया। साथ ही संस्कृत, न्याय, दर्शन तथा संगीत का भी अपूर्व ज्ञान प्राप्त किया था। इनका पद साहित्य विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध है। कवि की दृष्टि बड़ी विशाल और अन्तर्मुखी रही है।

श्रीमद देवचन्द्र (सं. 1746-1812) :

युगप्रधान जिनचंदसूरि की परम्परा के प. दीपचन्द के शिष्य[176] महान आध्यात्म तत्ववेता, योगी तथा जिन प्रतिभा के अथाग प्रेमी श्रीमद् देवचंद्र का जन्म सं.1746 बीकानेर के निकटवर्ती ग्राम 'चंग' में[177] पिता लूगीया तुलसीदासजी तथा माता धनबाई के घर में हुआ था।

इस महान आध्यात्मिक एवं तत्वज्ञानी कवि के इतिवृत की जानकारी कवियण द्वारा लिखित 'देवविलास रास' से[178] तथा उत्तमविजयजी कृत ''श्री जिनविजय निर्माण रास'' एवं पदमविजयजी कृत 'श्री उत्तमविजय निर्वाण रास' आदि गुजराती रास से उपलब्ध होती है।[179]

सं. 1766 में खरतगच्छीय वाचक राजसागर जी से 10 वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण की एवं बलोडा गांव के रम्य वेणातट भूमि ग्रह में सरस्वती की आराधना कर दीक्षा गुरू राजसागर से शास्त्राभ्यास आरम्भ किया और अल्प समय में ही षड़ावश्यक सूत्र, नैषधादि, पंचकाव्य नाटक, ज्योतिष, कोष, कौमुदी, महाभाष्यादि व्याकरण ग्रंथ, पिंगल, स्वरोदय, तत्बार्थसूत्र, आवश्यक ब्रहद्वृति, श्री हरि भद्रसूरि, हेमचन्दाचार्य, और यशोविजय जी के ग्रंथ छकर्मग्रंथ आदि अनेक ग्रंथों एवं शास्त्रों का अध्ययन किया। 16 वर्ष की अल्पायु में इन्होंने सर्वप्रथम 'ज्ञानार्णव' का राजस्थानी पद्यानुवाद 'ध्यान-'चतुष्पदिका' के नाम से किया । इसकी प्रशश्ति में आपने लिखा है-

''आध्यात्म श्रद्धा न धारी जिहां वसे नरनारी जी ।
पर मिथ्या मत ना परिहारी, स्वपर विवेचन कारी जी ॥ 9॥
निजगुण चरचा तिहां थी करतां, मन अनुभव में बरता जी
स्यादवाद निज गुण अनुसरताँ नित अधिको सुख धरता जी ॥ 10॥''

यह ग्रंथ सं. 1766 में मुलतान में पूर्ण हुआ। तत्पश्चात सं.1767 में बीकानेर में हिन्दी ग्रंथ 'द्रव्य प्रकाश' की रचना की। सं. 1776 में भरोठ में 'अगम सागर' नामक जैन तत्व के महत्वपूर्ण गद्यग्रंथ की रचना की।[180]

सं. 1777 में उनका आगमन गुजरात में हुआ और वे गुजरात के विविध नगर अहमदाबाद, खंभात, सूरत, पालीताणा, नवानगर, भावनगर, लींबड़ी, ध्रांगध्रां आदि में विहार करने लगे। राजनगर के संघ ने उन्हें **''वाचक''** पद से सम्मानित किया।

इनंकी समस्त रचनाओं का संग्रह 'श्रीमद देवचन्द्र' नाम से तीन भागों में आध्यात्म प्रसारक मंडल-पादरा की ओर से प्रकाशित हुआ है। इन्होंने प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती भाषा में अपनी लेखनी चलाई। परिणामस्वरूप इन समस्त भाषाओं में इनके अनेक ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। चौवीसी, वीसी, स्नान पूजा आदि के स्तवन एवं आगमसारादि जैन समाज में काफी प्रचलित हैं।

श्री देसाईजी ने इनके छोटे बड़े कुछ 20 ग्रंथों का उल्लेख किया है।[181] तथा श्री मणीलाल मोहनलाल पादराकर ने इनकी उपलब्ध कृतियों की संख्या 58 गिनाई है।[182] इसके अतिरिक्त 'साधु सभस्या द्वावश दोधक', 'आत्महित शिक्षा' भी प्राप्त है। सं.1812 में राजनगर में 66 वर्ष की आयु में इनका स्वर्गवास हुआ।

उदयरत्न (सं. 1749- 1799 लेखनकाल) :

ये बड़े प्रसिद्ध कवि थे। इनका रचनाकाल सं. 1749 से 1799 तक का अनुमानित है।[183] ये तपागच्छ के विजयराजसूरि की परम्परा में श्री शिवरत्न के शिष्य थे।[184] वे गुजरात के खेड़ा के निवासी थे, इस बात का समर्थन श्रीमद बुद्धिसागरजी ने भी किया है। मीयागाम में इनका स्वर्गवास हुआ था।[185]

इन्होंने स्थूलीभद्र के नवरस लिखे थे। बाद में आचार्य श्री से फटकार मिलने से 'ब्रह्मचर्यनी नववाड' के काव्यों की रचना की। खेड़ा में तीन नदियों के बीच चार मास तक काडस्सग्ग ध्यान में स्थिर रहे थे। अनेक भावसार आदि लोगों को जैनधर्म के रागी बनाये। संवत् 1789 में इन्होंने शत्रुंजय की यात्रा की थी। उदयरत्न एक बार सं.1750 में संघ के साथ शंखेश्वर पार्श्वनाथ की यात्रा को गये थे। वहाँ महराज श्री के दर्शन किये बिना अन्नादि

न ग्रहण करने का अभिप्राय व्यक्त किया । पुजारी ने मन्दिर खोलने से मना कर दिया। उस समय कहते हैं कि कवि ने ''प्रभातिया'' रचा, हार्दिक भाव से प्रभु की स्तुति की और एकदम बिजली के कडाके के साथ जिन-मन्दिर के द्वार खुल गये संघ ने श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ के दर्शन किये। इससे कवीश्वर की श्रद्धा और प्रभु के प्रभाव की प्रशंसा सर्वत्र होने लगी।

इनकी सब रचनाएँ गुजराती में लिखि गई हैं। इन्हें उपाध्याय की पदवी प्राप्त थी। गुजराती भाषा में इन्होंने विपुल साहित्य की रचना की। श्री मो. द. देसाई ने इनकी करीब 20 छोटी बड़ी कृतियों का उल्लेख किया है। इन्होंने चौवीसी, स्तवन, भजन-प्रभातिए, श्लोक, स्तुति रास आदि की रचना भी की। इनके सिद्धांचल के स्तवन अधिक लोकप्रिय थे। इनके अनेक हिन्दी पदों पर गुजराती का सहज प्रभाव दिखाई देता है।

संगीत लयता, पद लालित्य, अर्थ सारस्य एवं सरल भाववाही शैली में चिरंतन उपदेश देना कवि की कथा है।

सौभग्य विजयजी (रचना काल सं. 1750 आसपास) :

सौभाग्य विजयजी की गुरू परम्परा जन्म तथा विहार आदि के बारे में उपलब्ध सामग्री का अभाव है। इनका उल्लेख जैन गूर्जर साहित्य रत्नों, भाग-1 में दिया गया है। [186] इनकी रचित **चौवीसी** से कुछ स्तवन भी इसमें संकलित है। इसकी भाषा पर गुजराती-मारवाड़ी का प्रभाव है। इसका रचना काल सं.1750 के आसपास माना जाता है। उदाहरणार्थ एक प्रसंग अवलोकनीय है जिसमें राजुल की मिनोत्कंठा तथा विरहनिवेदन सूर की गोपियों की याद दिला देता है। कवि पार्श्व के रूप सौंदर्य का कितना चित्ताकर्षक चित्र प्रस्तुत करता है –

''छयल छबीली मोहन मूरति, तेज पुंज राजई रवि किरणो;
बदन कमल सारद शशि सोभई नाग लांछण जन चित्त हरणो ।
अजब आंगि जिम अंगि विराजई, भाल तिलक सिर मुकूट बणो;
कुसुम महाल मांहि जिनवर बइठे, धन धन सो निरखई नयणे ।
सूर असुर नर द्वारई बईठे भगति करई तुज जित लीणो
सोहग के प्रभु पास चिंतामणि सकल मन वंछित करणो ॥''

पद लालित्य भाषा सौंदर्य, संगीतमयता एवं चित्रोपमता से युक्त कवि की यह रचना उत्तम काव्य कृतियों में स्थान पाने योग्य है।

विनयचंद्र (सं. 1751-55 रचनाकाल) :

विवक्षित विनयचंद्र खरतगच्छीय जिनचंद्रसूरि की परम्परा में विद्यमान थे और युगप्रधान जिनचंद्रसूरि मुगल सम्राट अकबर प्रतिबोध, महान् प्रसिद्ध और प्रभावक आचार्य हुए हैं। कवि ने स्वयं 'उत्तम कुमार चरित्र' में अपनी गुरू परम्परा दी है। इसके अनुसार इनकी गुरू परम्परा इस प्रकार है –

युगप्रधान जिनचंद्रसूरि → सकलचन्द्रमणि → अष्टलक्ष्मीकर्ता महोपाध्याय समयसुन्दर → मेघविजय → हर्षकुशल → हर्ष निधान → ज्ञान तिलक → विनयचंद्र ।

इनके जन्मादि से सम्बधित कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

कवि की रचनाओं में प्रयुक्त राजस्थानी लोकगीतों की देशियों को देखते हुए श्री भँवरलाल नाहटा ने इनका जन्म राजस्थान में बताया (संभावना व्यक्त की है) है।[187] कवि ने गुजरात में रहकर हिन्दी तथा गुजराती मिश्रित राजस्थानी रचनाएँ की हैं। सं.1752 में पाटण में इनकी प्रथम कृति 'उत्तमकुमार चरित्र चौपाई' की रचना हुई थी।[188] इनकी विभिन्न कृतियों को देखने से यह ध्यातव्य है कि इन्होंने अपनी विद्वत्त गुरू परम्परा से साहित्य, जैनागम, आध्यात्म तथा श्रमण संस्कृति का बड़े मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया होगा। इनकी भाषा में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य प्रतीत होता है। जिससे प्रमाणित होता है कि संस्कृत काव्य ग्रंथों का सूक्ष्म अध्ययन किया होगा। इनकी प्राप्त रचनाएँ सं. 1752 से 1755 तक की हैं। इनकी कृतियों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि इनका विहार आदि का क्षेत्र गुजरात रहा होगा। इन कृतियों का रचना स्थल गुजरात है। 'उत्तमकुमार चरित्र चौपाई', 'बाड़ी पार्श्वस्तवन' तथा नारंगपुर पार्श्व स्तवनादि की रचना पाटण में हुई। विरमान वीसी, स्थूलिभद्र बारहमास, 11 अंग रज्झाय तथा चौवीसी की रचना राजनगर (अहमदाबाद) में हुई । कवि की उपलब्ध रचनाओं में उपयुक्त रचनाओं के फुटकर स्तवन, बारहमासे सज्झाया, गीत आदि भी हैं। इसके अतिरिक्त कवि की अन्य कृतियाँ भी होगी जिन पर शोधकार्य करना आवश्यक है।

इस प्रकार ज्ञात होता है की कवि प्रतिभा सम्पन्न एक समर्थ विद्वान तथा उच्च कोटि के कवि थे ।

किसनदास (सं. 1767 के आसपास) :

श्री संघराम जी महाराज के शिष्य[189] किसनदास के जन्मादि एवं शेष जीवन की जानकारी उपलब्ध नहीं होती । राजकवि जीवराम के मतानुसार किसनदास उत्तर भारत के श्री गौड़ ब्राह्मण थे।[190] वे बताते हैं कि इनकी माता अपने पति के निधन के पश्चात अपने पुत्र किसनदास तथा पुत्री रचनाबाई को लेकर श्री संघराज जी महाराज के आश्रम में अहमदाबाद चली आई थी। इनका आगे का अध्ययन इन्हीं संघराजी की छत्रछाया में हुआ। यहीं पर उन्होंने इन्हें कविता बनाना सिखाया। सिहोर निवासी श्री गोविन्द गिल्लभाई इन्हें गुजरात का ही मूल निवासी मानते हैं। [191]

अतः साक्ष्य के आधार पर इतना ज्ञात होता है कि 18वीं शती में ये वर्तमान थे। सं.1787 के आश्विन सुदी 10 के दिन अपनी बहन रतनबाई जो जैन दीक्षा प्राप्त थी, उसकी मृत्यु निमित्त 'उपदेस बावनी' (किसनबावनी) काव्य ग्रंथ की रचना की इनका संबंध दीर्घकाल तक गुजरात से रहा है। साथ ही[192] इस कृत में राजस्थान में प्रचलित देशज शब्दों, मुहावरों और कहावतों के प्रयोग के आधार पर यह ज्ञात होता है कि कवि का सम्बन्ध गुजरात के साथ-साथ राजस्थान से भी रहा होगा। जैन धर्मावलंबि होने के बावजूद किसनदास के विचार असाम्प्रदायिक और उदार थे।

हेमकवि (सं. 1776) :

हेमकवि 17 वीं शती के अंचलगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्री कल्याणसागर सूरि के शिष्य थे।[193] धर्ममूर्तिसूरि[194] के शिष्य कल्याणसागर सूरि गुजरात के थे।

पं. अम्बालाल प्रेमचन्द शाह ने हेमकवि तथा उनकी कृति ''मदन युद्ध'' का उल्लेख किया है। इसकी प्रति उनके पास सुरक्षित है।[195] इसी कृति के आधार पर ''आचार्य आनन्दशंकर ध्रुवं स्मारक ग्रंथ'' में इसका संपादन किया गया है। इस कृति के अंतर्गत गुजराती एवं राजस्थानी भाषा के अधिक शब्द प्रयोगों को देखते हुए इनका गुजरात और राजस्थान दोनों ही से घनिष्ठ संबंध जान पड़ता है।

इस कृति की भाषा सरल है। कवि के इतिवृत के बार में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है।

कनककुशल भट्टारक (सं.1794 के आसपास) :

ब्रजभाषा काव्य रचना की शास्त्रीय शिक्षा देने वाली एक मात्र काव्य शाला ''ब्रजभाषा पाठशाला'' की स्थापना कवि कविदों के कच्छ (गुजरात) के महाराजा राव श्री लखपतिसिंह ने की थी। इस काव्यशाला के योग्य संचालन के लिए जैन साधु श्री कनककुशल की नियुक्ति की गई थी। कनककुशल राजस्थान के किशनगढ़ नगर के कच्छ प्रदेश के निवासी थे।[196] महाराव श्री लखपतिसिंह ने इन्हें भट्टारक पदवी देकर सम्मानित किया। वे संस्कृत और ब्रजभाषा के प्रकांड पण्डित तथा साहित्यकार थे। कच्छ के इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि इनकी इसी विद्वता के कारण स्वयं महाराव श्री लखपतिसिंह ने इनसे ब्रजभाषा साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया था।

भट्टारक कनककुशल के गुरू प्रतापकुशल प्रतापी, चमत्कारी एवं वचन-सिद्ध प्राप्त थे। कुंअरकुशल के ''कवि वंश वर्णन'' से पता चलता है कि वे अपने समय के सम्मानित व्यक्ति थे । इनसे रचित ग्रंथ असाधारण व्यक्तित्व, कवित्व तथा आचार्यत्व का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इनकी कृतियों की प्रतियाँ जोधपुर, बीकानेर तथा पाटण के संग्रहों में सुरक्षित हैं। **''लखपत मंजरी नाममाला''**, **''सुन्दर शृङ्गार की रसदीपिका''**, **''महाराओ श्री गोहडजीनो जस''**, **''लखपति यश सिन्धु''** अदि इनके उपलब्ध ग्रंथ है।

इनकी ''लखपत मंजरी नाममाला'' तथा ''लखपति यश सिन्धु'' कृतियाँ विशेष महत्व की है। इनकी रचना लखपतिसिंहजी की प्रशंसा में रची गई थी। भाषा शैली की दृष्टि से एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

''अचल विंध्य से अनुत्र किधों ऐरावत डरत
विकट वेर वेताल कनक संघट जब कुरत
अरि गढ गंजन अतुल सदल शृङ्गालाबल तोरत ।
ऐसे प्रचण्ड सिंधुर अकल, महाराज जिन मान अति ।
पठए दिल्लीस लखपति को, कहे जगत धनि कच्छपति ॥''

कुंअर कुशल भट्टारक (सं. 1794-1821) :

गुजरात के कच्छ प्रदेश में ब्रजभाषा साहित्य की परम्परा का सूत्रपात करने वाले,

हेमविमलसूरि संतानीय और प्रतापी गुरूवर्य प्रतापकुशल के पट्टाधर कनककुशल भट्टारक के ये प्रधान शिष्य थे। इन्होंने महाराव लखपतिसिंह के साथ-साथ उनके पुत्र गौड़ की प्रशंसा में भी कई ग्रंथ लिखे थे। साहित्य क्षेत्र में इनका विपुल सृजन होने के कारण इनका साहित्य प्रदान सराहनीय है। संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं के जानकार थे उसमें उन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की थी साथ ही काव्य तथा संगीत क्षेत्र में भी निपूण थे। ब्रजभाषा पर इनका असाधारण अधिकार था।

इनकी रचनाएँ संवत 1794 से 1821 तक की प्राप्त हैं।[197] इन कृतियों की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ हेमचंद्रज्ञान भण्डार-पाटण, राजस्थान प्राच्य शोध प्रतिष्ठान-जोधपुर तथा अभय ग्रंथालय-बीकानेर में सुरक्षित हैं। कवि कोरा, छन्द, अलंकार आदि के अच्छे विद्वान थे। इनके उपलब्ध ग्रंथ इस प्रकार है –

''लखपत मंजरी नामलाला'', ''पारसति (परसात) नाममाला'', ''लखपत पिंगल''; अथवा ''कवि रहस्य'', गौड़ पिंगल, लखपति जससिंघु ''लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय''(मरसिया) ''महाराव लखपति पिंगल'' और 'लखपति जससिंधु'' महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इनमें रीतिकालीन आचार्य परम्परा का चरमोत्कर्ष है। इनका आचार्यत्व बड़ा व्यापक और प्रौढ़ दिखता है। इनका ''लखपति जससिन्धु ग्रंथ'' रीति ग्रंथों की परम्परा में कई अभावों को दूर करता है। यह ग्रंथ ''काव्य प्रकाश'' के आदर्श मानकर निर्मित हुआ है।[198] इस ग्रंथ के अंतर्गत महाराव लखपतिसिंह के सभी पक्ष प्रकाश में आ गये हैं महराव के शौर्य एवं ऐश्वर्य वर्णन का एक प्रसंग द्रष्टव्य है।

''कछपति देशल राउ कै, तषत तेज बलवीर
महाराव लखपति मरद, कुंअर कोटि कोटीर ॥ 2॥
बड़े कोट किल्ला बड़े, बड़ी तोप विकराल।
बड़ी रौस चिहु और बल, जबर बड़ी जंजाल''

गुणविलास : (सं. 1797 आसपास)

गुणविलास के गुरू सिध्दिवर्धन थे। इनका पूर्वावस्था का नाम गोकलचन्द था। इनके शेष जीवन विषयक अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। सं. 1797 में जेसलमेर में रचित इन की एक कृति ''चौवीसी'' प्राप्त है।[199] गुजराती भाषा प्रभावित इनकी चौवीसी के स्तवन

गुजरात में सविशेष प्रचलित है।[200] इस दृष्टि से कवि का गुजरात में दीर्घकाल तक रहना सिद्ध हो जाता है।

विभिन्न राग रागनियों में रचित ''चौवीसी'' भक्ति एवं वैराग्य भावना की दष्टि से सुन्दर कृति है। कवि की दृष्टि सदैव उदार समदर्शी एवं सर्वधर्म समन्वय की रही है। चौवीसी के स्तवन छोटे पर भाववाही हैं। कवि की असाम्प्रदायिक शुद्ध भावानुभूति एवं भक्त की-सी हार्दिक अभिलाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

''अब मोहीगे तारो दीनदयाल सब हीमत में देख,
जीत तीत तुमहि नाम रसाल।
आदि अनादि पुरष हो तुम्हीं विष्णु गोपाल
शिव ब्रह्मा तुम्ही में सरजे, भाजी गयो भ्रमजाल॥
मोह विकल भूल्यो भव मांहि, फर्यो अनन्त काल
गुण विलास श्री ऋषभ जिनेसर, मेरी करो प्रतिपाल''

कहीं-कहीं गुजराती का प्रभाव दृष्टव्य होता है। इसमें ब्रजभाषा का मार्दव एवं माधुर्य स्पष्ट नजर आता है।

निहालचन्द (सं. 1800 के आसपास) :

अन्तः साक्ष्य के आधार पर ये पार्श्वचन्द्रगच्छ के शिष्य थे। 18वीं शती के आसपास ये वर्तमान थे। इनका अधिकांश समय बंगाल में व्यतीत हुआ था।[201] इनकी मातृभाषा गुजराती थी। अब तक की खोजों के आधार पर इनके तीन ग्रंथ गुजराती में तथा दो ग्रंथ हिन्दी में प्राप्त हैं।[202]

''ब्रह्म बावनी'' कवि की हिन्दी रचनाओं में प्रसिद्ध एवं उत्तम रचना है। इसकी एक प्रति अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित है। इनमें 52 पदों का समावेश हुआ है। इसमें निराकार और अदृश्य सिद्ध भगवान की उपासना जैन परम्परानुसार की गई है। निर्गुणोपासक सन्तों की-सी मधुरता, भावाभिव्यक्तिता एवं आकर्षण इस कृति में सहज ही देखा जा सकता है। रचना कवि के आध्यात्म और वैराग्यपरक विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। ओंकार मन्त्र की महिमा बताता हुआ कवि कहता है –

''सिद्धन कौ सिध्धि, ऋद्धि सन्तन कौ महिमा महन्तन कौं देत दिन मांही है,
जोगी कौ जुगति हूं मुकति देव मुनिन कूं, भोगी कूं भुगति गति मतिउन पांही है।''

सं. 1782 से 1795 के बीच में रची गई अनुमानित इनकी दूसरी हिन्दी कृति ''बंगाल देश की गज़ल''[203] कुल 65 पद्य में रचित है। इस कृति में बंगाल के मुर्शिदाबाद का वर्णन है। यह कृति अपने एतिहासिक सार के साथ प्रस्तुत है।[204]

''पारो देश गांला खूब है रे, जहां बह्य भागीरथी आप गंगा ।
जहां शिखर समेत परनाथ पारस प्रभु झाडखंडी महादेव चंगा ।''

महाराव लखपति सिंह और ब्रजभाषा पाठशाला :

महाराव लखपतिसिंह कच्छ की आठ सौ वर्ष की जाडेजा शासक परम्परा में आते हैं। महाराव लखपतिसिंह की प्रामाणिक एवं संपूर्ण जीवनी उपलब्ध नहीं है। इतिहास और जनश्रुति के आधार पर अब तक जो कुछ भी लिखा गया है उसमें कहीं-कहीं परस्पर विरोधी तथ्यों की सम्यक् छानबीन एवं प्रामाणिक खोज का अभाव सा दिखायी पड़ता है।

इनके जन्म वर्ष के विषय में प्रत्यक्ष उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता। विदेशी एवं स्थानीय लेखकों के इतिहासों में उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं के संदर्भ में उनकी आयु के विषय में जो उल्लेख मिलते हैं वे विवादस्पद है। प्राप्त सामग्री एवं तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर यह कहना समाचीन होगा कि लखपतिसिंह का बाल्यकाल अत्यंत सुखद परिस्थितियों में व्यतीत हुआ लेकिन क्रमशः उनकी किशोरावस्था में परिस्थितियाँ विपरीत होती गईं।

लपखपतिसिंह की माता का नाम महाकुँवर तथा पिता का नाम देशलजी था। उनकी नौ रानियाँ थी जिनमें से महारानी राजकूँवर ने युवराज गौड़ को जन्म दिया जो आगे जाकर लखपतिसिंहजी के उत्तराधिकारी शासक बने।

महाकुंवरि सी लछिमी, देसल सौं यदुभानु ।
लजाषंभ लषधीर सौं, सुत गौड़ सौं सुजान॥53॥ [205]

इसके अतिरिक्त अनेक रखैल स्त्रियों से हुए अनौरस पुत्र मानसिंह, खान जी, सबल संग, कल्याण जी, मेघ जी, कानजी का भी पता चलता है जिनमें से मानसिंह को वे अत्यधिक

चाहते थे । [206]

कच्छ के ऐतिहासिक अनुक्रम के अंतर्गत यह दृष्टिगत किया गया कि युवराज लखपतिसिंह ने अपने पिता महारव देसलजी की जीवितावस्थ में ही सन् 1741 ई. में राज्याधिकार प्राप्त कर लिया था लखपतिसिंह का विधिवत राज्याभिषेक महाराव देसलजी की मृत्यु के पश्चात् अर्थात सं. 1808 विक्रमी ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को ही सम्पन्न हुआ । कच्छ के स्थानीय इतिहासकारों तथा चारण कवियों ने उनके राज्यकाल का आरंभ इसी राज्याभिषेक विधि के पश्चात् माना है ।[207] महाराव लखपतिसिंह की राजकीय प्रवृत्तियों की सबसे प्रमुख विशेषता प्रगतिशीलता की थी। उनकी प्रवृत्ति में प्रगतिशील दृष्टिकोण दृष्टव्य होते हैं। वे न्यायी राजा थे । अपने राज्य के छोटे से छोटे व्यक्ति को न्याय मिले इस प्रकार का प्रयत्न वे हमेशा करते थे।

जीवनी विषयक चर्चा के अंतर्गत हमने यह देखा है कि युवराज कुंवर लखपतिसिंह का राजकीय क्षेत्र में प्रवेश युद्धकालीन परिस्थितियों में हुआ था। सन् 1730 ई. में सरबुलदखों के साथ हुए युद्ध में लखपतिसिंह ने मात्र बीस वर्ष की अवस्था ही में साहस और शौर्य का परिचय दिया था। वीरता के साथ साथ उनमें उदारता और गुणग्रहकता के सद्गुण विद्यमान थे वे कवि एवं कलाकारों को मुक्तहस्त दान देते थे। उनके द्वारा गुण की प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर दूर-दूर से भी अनेक कवि कलाकार उनके पास आते थे।

''पीहर परदेसीनि कौं निजघर नर कौ नाथ।
कवि जन वगै हो कल्परु बकसै धन भरि बाथ॥ 5॥''

एक अच्छे जौहरी की तरह लखपतिसिंह कवि एवं कलाकारों की अद्भूत परीक्षण शक्ति से सम्पन्न थे और उनकों यथायोग्य दान देते रहते थे।

''रीझि बूझि वै हीरकन। मोल सुं मुंहगे जानि ।
जिमि कौ लषपति जौहरी कीमति करत प्रमानि ॥

(लखपति जय सिंधु'' छंद 12)

कवियों ने लखपतिसिंह की इस दानवीरता की प्रशंसा भी सुंदर शब्दों में इस प्रकार की है –

''सागर गागर सौ लगैं अवनि उजागर पास

दान लहरि लषि लहरि तैं अनु दिन करत अभ्यास।''

(''लषपति जय सिंधु'' छं 96)

लखपतिसिंह स्वभाव से जिज्ञासु थे। रामसिंह मालव की विलक्षणता और विविध हस्तकला एवं उद्योगों के ज्ञान का लाभ महाराव ने लिया। लखपतिसिंह ने मालम के मार्गदर्शन में अनेक प्रकार के हुनर एवं उद्योगों का कच्छ में प्रारम्भ कराया ।

''जे जे हुन्नर जगत में लषपति ते ते लीन ।

आप हजुर सबैं वहै कल बुधिबल तैं कीन्ह ॥ 16॥''

(लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय)

लखपति सिंह ने संगीत का शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया था। संगीत शास्त्र विषयक प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथ **''संगीत रत्नाकर''** को उन्होंने स्वयं काव्यबध्द किया था।

महाराव लखपतिसिंह साहित्य प्रेमी, रसिक तथा शास्त्र प्रेमी और संस्थापक थे। लखपति के साहित्यिक जीवन के अन्तर्गत हम यह दृष्टिगत कर आये हैं कि उन्होंने व्रजभाषा के प्रसिद्धि विद्वान् कवि कनककुशल को अपने दरबार में आमंत्रित किया था। कनककुंशल की विद्वता की कद्र करते ''भट्टारक'' के पद से सम्मानित किया।

शास्त्र प्रेम एवं विविध शास्त्रों के अध्ययन की स्थायी व्यवस्था के लिये किये गये कार्य महाराव लखपतिसिंह की अमर कीर्ति के वाहक हैं। उनके द्वारा चित्रशाला, संगीतशाला एवं विविध कर्मशालाओं का निर्माण हुआ था, जिसका उल्लेख किया जा चुका है। इससे यह प्रतिफलित होता है कि वे ज्ञान-विज्ञान की शास्त्रीय शिक्षा के पक्षपाती थे। जिसका सर्वोकृष्ट उदाहरण महाराव लखपतिसिंह द्वारा स्थापित ''ब्रजभाषा पाठशाला'' है। ब्रजभाषा पाठशाला का निर्माण सं.1747 में भुज में लखपतिसिंह ने किया और यह सन् 1948 में कच्छ राज्य के भारत में विलीन होने के साथ-साथ समाप्त हो गई । इस प्रकार इसकी आयु 201 वर्ष की रही । हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह हिन्दीतर प्रदेश में ब्रजभाषा एवं काव्य शिक्षा का शैक्षिक केन्द्र स्थापित हुआ।

आचार्य कनककुशल की सुयोग्य अध्यक्षता में इस काव्यशाला का संचालन प्रारम्भ हुआ महाराव लखपतिसिंह ने काव्यशाला के समुचित निर्वाह के लिये ''रेहा'' नामक ग्राम का

दान किया, जिसकी वार्षिक आय तीन हजार रुपयों की थी। जिससे पूरी काव्यशाला का जो खर्च, जिसके अंतर्गत काव्यशाला के अध्यक्ष का जीवन निर्वाह और प्रत्येक कवि विद्यार्थी की पढ़ाई रहने एवं खाने-पीने के खर्च की व्यवस्था इससे होती थी।

इस काव्यशाला के पाठयक्रम में **भाषाव्याकारण, मानमंजरी नामक कोष, अनेकार्थमंजीरी, छंद श्रृंगारपिंगल, चिंतामणिपिंगल, छंदभास्कर पिंगल, हमीर पिंगल, लखपति पिंगल, नागराज पिंगल, भाषाभूषण, बंशीधर अलंकार-ग्रंथ, कविप्रिया, रसरहस्य, काव्यकुतोहल, रसिक प्रिया, सुंदरश्रृंगार बिहारी सतसई, वृंद सतसई, देवीदास कृत राजनीति, नाथुराम कृत राजनीति, सुंदरविलास, ज्ञान समुद्र, पृथ्वीराज रासो, अवतार चरित्र, कृष्ण बावनी, कवित बंध रामायण, रामचंद्रिका रागमाला, सभाविलास [208] का समावेश किया गया था।**

उपर्युक्त पाठयक्रम में तीन प्रकार के ग्रंथों को प्रमुखता दी गई थी जिसमें – 1) ब्रजभाषा ज्ञान विषयक ग्रंथ, 2) काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ और 3) प्रसिद्ध साहित्य कृतियाँ। इसके अतिरिक्त तत्कालीन राजकीय वातावरण को लक्षित करते हुए काव्यशाला के कवि विद्यार्थियों के कवि जीवन में उपयोगी ऐसे विषयों के प्रसिद्ध ग्रंथों को भी पाठयक्रम में उचित स्थान दिया गया था।

काव्य शास्त्र के अध्ययन के लिये चुने गये ग्रंथों में ''छंद श्रृंगार पिंगल'', ''चिंतामणि पिंगल'', ''छंद भास्कर पिंगल'' ''हमीर पिंगल'', ''लखपति पिंगल'' ''नागराज पिंगल'' ''भाषा भूषण'' ''बंशीधर अलंकार-ग्रंथ'', कवि प्रिया ''रसिक प्रिया'' ''सुंदर श्रृंगार'', ''रसरहस्य'', काव्य कुतोहल ये ग्रंथ अपने अपने विषय के प्रसिद्ध एवं प्रतिनिधि ग्रंथ हैं। कवि शिक्षा देने वाली इस पाठशाला के पाठयक्रम में उपर्युक्त ग्रंथों का महत्वपूर्ण ही नहीं अनिवार्य स्थान था। हिन्दी के रीतिकाल के प्रसिद्ध आचार्य कवियों में से चिंतामणि महाराज जसवंतसिंह, केशवदास, सुंदरदास शाहजहाँ के आश्रित कवि सुंदरदास के काव्य शास्त्रीय ग्रंथों को स्थान देकर इस पाठ्यक्रम को अत्यंत उपयोगी बनाने के साथ-साथ गुजरात प्रदेश में हिन्दी क्षेत्र की काव्य शास्त्रीय परंपरा की शिक्षा देने का सुयोग्य माध्यम भी बनाया गया ।

उपर्युक्त पाठ्यक्रम की यह विशेषता है कि उसमें काव्य के शास्त्र-पक्ष के साथ उसके व्यवहार-पक्ष अध्ययन की भी समुचित व्यवस्था की गई थी।

उपर्युक्त पाठ्यक्रम तैयार करने की अवधि प्रत्येक विद्यार्थी के लिये पाँच वर्ष की होती थी। विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थी के लिये यह समय कम से कम दो वर्ष का था।[209] उपर्युक्त निर्धारित पाठयक्रम का अध्ययन पूर्ण होने के पश्चात् विद्यार्थी की परीक्षा ली जाती थी। उनके काव्यशास्त्र के ज्ञान एवं काव्य-रचना शक्ति की परीक्षा होती थी। समस्यापूर्ति तथा बावनी की रचना के द्वारा उसकी इस शक्ति का परीक्षण किया जाता था । उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी को ही ''कवि'' की उपाधि प्राप्त हो सकती थी।

इस प्रकार 'ब्रजभाषा पाठशाला' द्वारा लखपतिसिंह ने गुजरात में हिन्दी काव्य-रचना की प्रवृत्ति को अभूतपूर्व प्रेरणा और प्रोत्साहन देकर उसका सिंचन किया। उनकी स्थायी प्रवृत्तियों का यह स्थायी स्मारक कहा जाता है। परिणामस्वरूप उनके समय (लगभग सन्1747 ई. से लेकर दो सौ वर्ष सन् 1947ई.)[210] तक चलनेवाली इस काव्यशाला से सैंकड़ों कवि विद्यार्थी निकले जिन्होंने गुजरात के हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की।

महाराव लखपतिसिंह के समग्र जीवन एवं कृतित्व को देखते हुए उनके व्यक्तित्व में विरोधी लगने वाले कुछ तत्व भी पाये जाते हैं। एक ओर उन्होंने साहित्य-संगीत चित्रादि ललित कलाओं में तो सक्रिय रस दिखाया तो दूसरी ओर उन्होंने अनेक हुन्नर, उद्योगों, कीरीगारी को प्रोत्साहन ही नहीं दिया वरन उनको सिखाने की स्थायी और खर्चीली व्यवस्था भी की। एक ओर उन्होंने कवि, संगीतकारों मूर्तिकाओं को राज्याश्रय दिया तो दूसरी ओर सामसिंह मालव जैसे कारीगरों को भी आश्रय दिया । उसी प्रकार वे विलासी होते हुए भी भक्त थे। उनकी रचनाओं में एक ओर सुर तरंगिनी और ''रस तरंग'' जैसी श्रृंगार और सौन्दर्य विषयक रचनाएँ मिलती हैं तो दूसरी और ''लखपति भक्ति विलास'' और ''सदाशिवब्याह'' जैसी वैराग्य और भक्ति सभर रचनाएँ भी।

इस प्रकार महाराव लखपतिसिंह के राजकीय जीवन का प्रारंभ अनेकाविध प्रवृत्तियों से युक्त था। प्रगतिशीलता की दृष्टि से वे अपने समय से आगे निकल चुके थे। यदि उनके राजकीय जीवन के तथ्यों का समुचित परीक्षण किया जाय तो यह निष्कर्ष निकलता है कि महाराव लखपतिसिंह अपनी राजकीय सत्ता और शक्ति का उपयोग जीवन मूलक व्यापक, प्रगतिशील, सांस्कृतिक,साहित्यिक प्रवृत्तिओं के पोषक और विकास के लिये ही करते थे।

वे अपने जीवन के अंतिम समय में अत्याधिक रोगग्रस्त रहे । यह पूर्वनिर्दिष्ट किया

गया है कि इनके जन्म एवं मृत्यु समय के बारे में ठोस प्रमाण नहीं प्राप्त होते । आश्रित कवि कुँवरकुशल ने ''महाराव लखपति लषपति स्वर्ग प्राप्ति समय'' शीर्षक रचना में किया है। इससे संबधित सामग्री यहाँ उपलब्ध है।

''बरस इकावन बिमल अनुज प्रभु के जब आये ।
पूरन आयु प्रमानि किये तब मन के भाये ॥
तुला करि तिहि समय दांनहु जगन कौ दीन्हें ।
प्रजा नृपति हित पुन्य किये श्रवननि सुनि लीन्हें ॥
तप जप अनेक सुमता सहित ध्यान सदाशिव कौ धरयौ ।
पातिक पजारि सब पिंड के कुंदर तै उज्वल करयो ॥ 33॥
संवत मासि सुदि जानि पूरना तिथि पंचमि धुव ।
वार अदीत बनाउ और वषतर असलेषा ।
तिहि समय ध्यान थिर चित्त किया देषन साहिब को दुरग ।
तजि पाप आप नृप लषपति सुमन सिधायो शुभ सरग ॥ 36॥''

उपर्युक्त छंदों से निर्विवाद रूप से यह सिद्ध होता है कि मृत्यु के समय लखपतिसिंह की आयु 51 वर्ष थी तथा उनकी मृत्यु सं. 1817, ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को हुई थी।

निष्कर्ष : उपर्युक्त समुचित विवेचन से महाराव लखपतिसिंह का बहुमुखी व्यक्तित्व प्रगट होता है। उनकी लोक प्रसिद्धि युवराजकाल से लेकर उनकी मृत्यु के उपरांत भी दीर्घकाल तक रही होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है।[211] महाराव लखपतिसिंह के समर्थ व्यक्तित्व ने गुजरात के हिन्दी काव्य के पल्लवन, पोषण एवं संवर्धन के लिये बड़ा उल्लेखनीय कार्य किया था। उन्होंने अपने जीवन के व्यक्ति पक्ष को समष्टि के विकास के लिये इस प्रकार सुनियोजित रूप में, प्रस्तुत किया कि कच्छ के ही नहीं, गुजरात, राजस्थान आदि प्रदेशों के कवि शिक्षा इच्छुक बाल कवि उससे सुदीर्घकाल तक लाभान्वित एवं उपकृत होते रहे। आज तक किसी काव्य शास्त्रीय समस्या के हल के लिये भुज की ब्रजभाषा काव्यशाला का शिक्षित-दीक्षित कवि उपयुक्त एवं प्रमाणभूत माना जाता रहा है। इसे लखपतिसिंह के जीवन के उच्च कक्षा के साहित्यिक कार्यों का सुफल ही समझा जाना चाहिए। गुजरात में इस प्रकार का राज्याश्रप एवं कवि शिक्षा प्रदान करने वाले एक मात्र लखपतिसिंह ही शासक हुए ।

गुजरात में रीतिकलीन कलाकृतियों का जो विकास हुआ, कवि प्रतिभा को जो प्रोत्साहन मिला, इसका कारण लखपतिसिंह द्वारा प्रस्थापित की गई ब्रजभाषा पाठशाला ही थी। कच्छ जैसे अहिन्दी प्रदेश में लखपतिसिंह द्वारा किया गया यह कार्य अपने आप में अपूर्व एवं स्थायी महत्व का है।

लखपतिसिंह के इन मूल्यवान जीवनकार्यों का मूलाधार था उनका गुण सम्पन्न, उदार, कला-प्रेमी, काव्य मर्मज्ञ-व्यक्तित्व । उनमें इन सब गुणों के होते हुए भी यदि शास्त्र-प्रेम से युक्त और गुण संरक्षक गंभीर दृष्टिकोण न होता तो उनकी सभी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ तत्कालिकता तक ही सीमित रहती। इसलिये महाराव लखपतिसिंह को आज का साहित्य इतिहास विस्मृत नहीं कर सकता, वह उनके व्यक्तित्व के उक्त व्यावर्तक गुण के कारण ही।

यदि महराव के जीवन और व्यक्तित्व को और अधिक अनुकूल एवं सहायक परिस्थितियाँ मिलती या ऐसी कोई पूर्व परंपरा मिलती जैसी उन्होंने भविष्य के लिये निर्मित की थी, तो कदाचित आज उसका अत्यंत प्रभावी परिणाम हुआ होता ।

गुजरात के गुर्जर जैन कवियों का साहित्य प्रदान :

सोलहकरण रास : यह रचना 17वीं शती के चन्द्रकीर्ति द्वारा लिखि गई रचना है। यह विभिन्न छन्दों और रागों में रचित लघु रचना है। इस कृति की रचना भड़ौच नागर के शांतिनाथ मंदिर में हुई थी।[212]

राजकुमार आख्यान : यह एक आख्यान काव्य है जिसमें चार सर्गों का वीर रस प्रधान है। इस कथा का मुख्य आधार प्रथम तीर्थंकर ''ऋषिभदेव'' के पुत्र सम्राट भरत के सेनापति ''जयकुमार'' का चरित्र है। इनकी रचना बारडोली नगर में संवत 1655, चैत्रसुदी दसमी के दिन हुई थी।

इसके प्रथम सर्ग के अन्तर्गत कवि ने जयकुमार और सुलोचना के विवाह का वर्णन किया है। दूसरे और तीसरे सर्ग में दो भवों का (पूर्व का) वर्णन और चौथे में जयकुमार के निर्वाण प्राप्त करने की कथा वर्णित है। मूलतः यह वीर-रस प्रधान काव्य है फिर भी शृंगार एवं शांत रास का सुन्दर नियोजन हुआ है।

शृंगार वर्णन का सुंदर चित्रण सुलोचना के सौन्दर्य के वर्णन का एक प्रसंग यहा द्दष्टव्य है-

''कमल पत्र विशाल नेत्रा, नाशिक सुक चंच ।
अष्टमी चन्द्रज भाल सौहे, वेणी नाग प्रपंच ॥
सुन्दरी देखी तेह राजा चिन्त में मन मांहि ।
ए सुन्दरी सूर सुंदरी, किन्नरी किम कहे नाम ॥''

इस कृति में युद्ध का वर्णन अत्यंत मनोरम और स्वाभाविक जान पड़ता है। जयकुमार और अर्क कीर्ति के बीच युद्ध का एक प्रसंग अवलोकनीय है-

''हस्ती हस्ती संघाते आथंडे,
रथो रथ सूभट सहू इन भड़े ।
हय हयारव जब छजयो,
नीसांण नादें जग गज्जयो ॥''

भाषा राजस्थानी डिंगल है। भाषा एवं भाव की दृष्टि से कृति महत्वपूर्ण है।

पवनाभ्यास चौपाई : इसमें कुल 17 पद्य है। कवि ने इसे 'बह्मज्ञान चौपाई' भी कहा है। यह कृति सं. 1608 में वर्तमान आणदवर्धन सूरि ने लिखि है। इस की रचना सं.1608 में हूई थी।[213] यहाँ पर कृति की प्रारंभ की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

''परम तेज पणमुं एक चित्त, जे माहि दीसड बहुलुं चित्त,
जन हुइ पोतइ परवदत्त, तउ पामीजइ एहजि तत ।''

पुरुन्दरकुमार चौपाई : इस चौपाई की रचना सं. 1612 के आसपास विधमान मालेदव ने की थी। यह रचना 372 पद्यों में रचित है। इसका रचनाकाल 1652 बताया जाता है।[214] मुनि श्री जिनविजयजी अपने पास की इसकी प्रति के विषय में लिखते हैं ''यह पुरन्दर कुमार चौपाई (चउपई)'' ग्रंथ हिन्दी में है। इसे मैंने आज ही ठीक-ठीक देखा है। रचना अच्छी और ललित है।[215] अपनी इस कथा की सरसता के लिए कवि स्वयं कहता है –

''नरनारी जे रसिक ते, सुणियहु सब चितुलाइ ।
ठूंठ न कब हि घुमाइयहि, विना सरस तरु नाइ ॥
सरस कथा जइ होई तो, सुणइ सविहि मन लाइ।
जिहां सुवास होवहि कुसुम, सरस मधुप तिहां जाई ॥''

इस कृति में कवि प्रतिभा उच्चकोटि की दर्शित होती है। मालदेव की अन्य एक कृति भोजप्रबंध है।

भोज प्रबंध : इस कृति को मालदेव ने 2000 श्लोंको से पूर्ण तीन अध्यायों में विभक्त किया है। इस कथा का आधार प्रबंध चिन्तामणि तथा वल्लभ का भोज प्रबन्ध है फिर भी रचना प्रौढ़ एव स्वतंत्र है। भाषा कहीं समान्य और कही अपभ्रंश से प्रभावित है-

वतनें वन छिपपउ फिरउ, गव्हर वनहं निकुंज ।
भूखड़ भोजन भांगिवा, गोवलि आयउ मुंज ॥ 247॥

गोकुलि काई ग्वारिनी, ऊँची बइठी खाटि ।
सात पुत्र सातइ बहू दही बिलोवहिं माटि ॥ 48॥

इन पंक्तियों में राजा मुंज के युद्ध में पराजित होकर एक गाँव में आने का वर्णन है।

इसके अतिरिक्त 'विक्रम पंचदण्ड कथा' (1715 गाथाओं की बृहद रचना)[216] देवदत्त चोपाई'' 560 पद्यों की रचना[217] ''वीरंगदा चउपइ'' (75 पदों की रचना)[218] ''स्थूलभद्र फाग'' 107 पद्यों की कृति[219] तथा 'राजुल नेमिनाथ धमाल' पद्यों का लघुकाव्य[220] जैसी कृतियों अनुभूति की दृष्टि से कवि प्रतिभा के परिचायक व भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश व गुज़राती से प्रभावित है।

हनुवन्त कथा : हनुवन्त कथा के रचनाकार ब्रह्मराय मल्ल है। इस कृति की रचना सं. 1607 में हुई थी। यह कथा अंजना पुत्र हनुमान तथा भक्तमती अंजना के चरित्र पर आधारित है। हनुमान के पिता का अखण्ड विश्वास है कि जिनेन्द्र की पूजा से आत्मा निर्मल और शुद्ध होती है। और मोक्ष की प्राप्ति होती है। यहाँ पर पूजा की तैयारी का एक प्रसंग उद्धृत किया गया है –

''कूँकूँ चंदन धसिवा धरणी, मांझि कपूर मेलि अती धणी।
जिणवर चरण पूजा करी, अबर जन्म की थाली भरी''

यहाँ पर बालक हनुमान को तेजस्वी चित्रण हुआ है –

''बालक जब रवि उदय कराया, अन्धकार सब जाय पलाय ।
बालक सिंह होय अति सूरो, दन्तिघात करे चक-चेरो

सघन वृक्ष्त बन उति विस्तारो. रती अग्नि करे दह छारो ।

जो बालक क्षत्रिय कौ होय, सूर स्वभाव न छोड़े कोय ॥''

कवि की अन्य कृतियों में **''पद्युम्न चरित्र''** की एक प्रति संवत 1820 की लिखी आमेर शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है इसकी प्रशस्ति में बताया गया है कि इसकी रचना हरसोर गढ़में सं. 1628 को हुई थी।

सुदर्शन रास : यह कृति सुल्तान अकबर के जीवन व्यवहार और उसकी कुछ विशेषताओं को लेकर रची गई थी। इस कृतिका रचना काल सं. 1629 वैशाख शुक्ल सप्तमी है। अतः यह कृति सम्राट अकबर के राज्यकाल के समय में निर्मित थी। इसके अंतर्गत अकबर के बारे में कवि कहते हैं कि अकबर इन्द्र के समान राज्य का उपभोग करता रहा था। उसके हृदय में भारत के षट् दर्शनों के प्रति अत्यन्त सम्मान था –

''सहि अकबर राजई, अहो भोगवे राज अति इन्द्र समान।

और चर्चा उर राखै नहीं अहो छः दरसण को राखे जी मान॥1॥''

इसकी भाषा पर गुजराती का सहज प्रभाव निहित होता है। रचना साधारण कोटि की है।

श्रीपाल रास : इसकी 40 पन्नों की एक प्रति आमरे शास्त्र में है। इसमें 297 पद्य हैं और सं.1686 की लिखी प्रति है। इसमें राजा श्रीपाल की कथा है इसका कथानक बड़ा ही मनोरम और भक्तिपूर्ण भावों से आपूर्ण है। जिनेन्द्र की भक्ति इसका प्रमुख विषय है।

''भविष्य दत्त की रचना : सं.1633 में कार्तिक सुदी चौदस को शनिवार के दिन इसकी रचना हुई थी।[221] सं 1690 की लिखी एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है उसमें 67 पन्ने हैं।''

सभी ग्रंथों एवं कृतियों में ब्रह्मरायमल्ल की हिन्दी भाषा गुजराती तथा अपभ्रंश से प्रभावित हुई प्राप्त होती है।

''जइत पदवेलि'' सं 1651-55 में विद्यमान खरतगच्छीय दयाकलश के शिष्य अमर माणिक्य के शिष्य साधुकीर्ति के गुरूभ्राता कनकसोम ''जइत पदवेलि'' के रचनाकार थे। इस कृति मे खरतगच्छीय साधुकीर्ति द्वारा अकबर के दरबार में तपगच्छियों को शास्त्रार्थ

में परास्त करने का वर्णन किया गया है इसमें 49 छंद है। इसकी एक प्रति बीकानेर भण्डार में सुरक्षित है। वृद्धसागर द्वारा सतीदास संघवी के माध्यम से साधुकीर्ति को ललकारने का वर्णन भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से देखने योग्य है –

''तपले चरचा उठाई, श्रावक ने वात सुणाई ॥ 8॥
मो सरिखो पंड़ित जोई, नहीं मझिन आगरे कोई,
तिणि गर्व इसो मन कीधक बुद्धिसागर उपयश लीधउ ॥9॥
श्रावक आगे इस बोलई, अन्ह गाथा रस कुण खोलइ ।
श्रावक कहइ गर्वन कीजइ, पूछी पंडित समझी जई ॥ 10॥
संघवी सतीदास कुं पूछई, तुम्ह गुरू कोइ कहां छइ ।
संघवी गाजी नइ भाखई, साधुकीर्ति छै, इम दाखई ॥ 11॥
साधुकीर्ति तत्व विचार्यो, तत्वारथ माँहि संमायो ।
पौषध छई प्रकार, बूझयो नहीं सही सागर ॥ 13॥''

माधवनल कामकंदला : कुशललाभ (सं.1616 आसपास) की शृंगारपरक रचना है। इसकी रचना श्रावक महाराज की प्रेरणा से फाल्गुन सुदी 13 रविवार को सं. 1616 में हुई थी।[222] इस रचना में 550 चौपाइयाँ हैं। इसका कथानक माधवनल और कामकंदला के प्रेम वर्णन से बड़ा ही मनोरम जान पड़ता है। इस काव्य की विशेषता प्रेम और शृंगार का शिष्ट और मर्यादापूर्ण निर्वाह है। कवि की यह रचना आज भी राजस्थान और गुजरात में प्रसिद्ध है।

स्थूलभद्र छत्तीसी : इस रचना में कुल 37 पद समाविष्ट हैं। यह कृति बीकानेर की अनूप संस्कृत लायब्रेरी के एक गुटके के पृष्ठ 91-98 पर अंकित है।[223] इस काव्य का मुख्य आधार आचार्य स्थूलभद्र की भक्ति है। एक उदाहरण दृष्टव्य है।

''वैसा वाइड सुणी भयक लज्जित मुणि,
सोच करि सुगुरन् कइ पास आवई।
चूंक अब मोहि परी चरण तदि सिर धिर,
आप अपराध आपई खभावइ ॥37॥''

वीर विलास फाग : इस कृति के रचनाकार वीरचन्द्र जो 17वीं शती के प्रथम चरण में अवतरित थे। यह रचना एक खण्ड काव्य है, जिसके अंतर्गत 22 वे तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन का एक प्रसंग लिया गया है जो 137 पदों में रचित है। इसकी एक प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है।[224] इस कृति के रचना काल के बारे में पुख्ता जानकारी प्राप्त नहीं होती ।

फाग बड़ा ही सरस, सुन्दर एवं काव्यत्व पूर्ण है। राजुल की विरह दशा का वर्णन अत्यंत हृदय द्रावक बन पड़ा है विरहणी नायिका का सुंदर उदाहरण यहा प्रस्तुत है –

'कनकमि कंकण मोड़ती, तोड़ती मिणिमिहार।
लूं चती केश-कलाप, विलास करि अनिवार ॥74॥

नयणि नीर काजलि गर्लि, टलवलि भामिनी भूर।
किम करूं कहि रे साहेलड़ी विहि नडि गयो मझनाह ॥17॥[225]

जम्बू स्वामी वेलि : कवि वीरचन्द्र की इस दूसरी कृति में जम्बूस्वामी का चरित्र वर्णित है। इसकी एक प्रति उदय पुर के खण्डेलवाल दिगम्बर जैनमन्दिर के शास्त्र भण्डार से प्राप्त है।[226] वेलि की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। डिंगल का प्रभाव स्पष्ट निहित होता है। इनकी अन्य कृतियाँ इस प्रकार है-

''जिन आंतरा'' वीरचन्द्र की यह लघु रचना है। ''सीमंधर स्वामी गीत'' में कवि ने सीमंधर स्वामी का स्तवन किया है। ''संबोध सत्ताणु'' दोहा छन्द में रचित 57 पध की यह एक उपदेशात्मक कृति है। इसकी प्रति भी उदयपुर के उपर्युक्त संग्रह में संकलित है। इन शिक्षाप्रद दोहों में कवि के सुन्दर भावों का निर्वाह हुआ है।

''नीचली संगति परिहारो, धारो उत्तम आचार।
दुर्ल्लभ भव मानव तणो, जीव तूँ अलिमहार ॥ 40॥''

नेमिनाथ रास : इसमें नेमिनाथ राजुल का सुप्रद्धि कथानक है। इसकी रचना संवत 1673 में हुई ।[227] **''चित्तनिरोध कथा''** पधों की यह उपदेशात्मक लघु कृति है। इसमें चित्तनिरोध का उपदेश दिया है। **''बाहुबलि वेलि''** विभिन्न छन्दों में रचित कवि की एक लघु रचना है। इसकी भी उदयपुर से प्राप्त एक प्रति का उल्लेख डॉ. कासलीवाल जी ने किया है।[228]

मगन छत्तीसी : मगन छत्तीसी की रचना सं. 1631 1676 में विद्यमान उदयराज उदो ने की थी। इस कृति की रचना सं. 1667 फाल्गुन वदी 13 शुक्रवार को मांडबई नामक स्थान पर हुई थी।[229] इसके अंतर्गत कवि का यह मानना है कि भगवान जितेन्द्र की भक्ति और प्रीति सांसारिक सम्बन्धों और मानापमानों को दूर करने में पूर्ण समर्थ है ।

''प्रीति आप परजले, प्रीति अवरां पर जालै ।
प्रीति गोत्र गालवै, प्रीति सुधवंश विरालै ॥ आदि ॥''

गुण बावनी : 57 पद्यों में रचित गुण बावनी की रचना सं. 1676 वैशाख सुदी 15 के दिन बवेरइ में हुई थी।[230] इस कृति में पाखण्ड निराकरण और आध्यात्म सम्बन्धी कवि के विचार अभिव्यक्त हुए है। इस रचना के प्रारंभ में कवि ने ''प्रणव अक्षर'' रुप ब्रह्म को नमन किया है –

''उनंकाराय नमो उलख अवतार अपरंपार।
गहिन गुहिर गम्भीर प्रणव अख्यर परमेसर॥''

अन्य एक पंक्ति में बाह्याडम्बर की व्यर्थता और अंतःकरण की विशुद्धता पर बल देता हुआ कवि कहता है –

शिव शिव किद्यां किस्यूं, जीत ज्यों नहीं काम क्रोध छल,
कति कहनाया किस्यूं, जो नहीं मन मांझि निरमल।
जटा बधायां किसूं, जांभ पाखण्ड न छंडपउ ।
मस्तक मूडयां किसूं मन जौ माहि न मूं डपउ ।
लूगडे किसूं मैले किये, जो मन माहि मइलो रहइ
घरबार तज्यों सीवउ किसुं, अगबूझा उदो कहइ ॥53॥

वैध विरहणी प्रबन्ध : 78 दोहो की इसकी एक प्रति अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में मौजूद है। इसमें भक्ति और शृंगार का उज्ज्वल समन्वय हुआ है। इनकी (उदयराज उदो) की एक अन्य कृति ''चौविस जिन सवैया'' का उल्लेख नाहटा जी ने किया है [231] इस कृति में तीर्थकारों की भक्ति 200 सवैयों की रचना की है।

उदैराज रादूहा : श्री नाहटा जीने उदयराज के करीब 500 दोहों का उल्लेख किया है।[232]

अधिकांश दोहों की एक प्रतिलिपि उन्हीं के भण्डार में प्राप्त है। कवि के नीति विषयक दोहों विशेषतः राजस्थान में अत्याधिक लोकप्रिय रहे हैं। कवि के दोहों की एक प्रति ''मनः प्रशंसा दोहा''[233] नाम से जयपुर के बड़े मन्दिर के गुटका नं. 124 में निबद्ध है। इसमें मन को सम्बोधित कर कवि ने उनके दोहों की रचना की है।

''वासुपूज्य जी धमाल'' यह अभयचन्द्र (सं. 1640-1721) की लघु रचना है। जिसके अन्तर्गत वासुपूज्य तीर्थंकर का मानव रूप में निरुपण है। इसके अतिरिक्त चन्दगीत[234] कालिदास के मेघदूत की शैली पर रचित एक लघु विरहकाव्य है। इसमें राजुल चन्द्रमा से अपने विरह का वर्णन करती है और चन्द्रमा के माध्यम से अपना संदेश नेमिनाथ के पास भेजती है –

''विनय करी राजुल कहे, चन्द्रा वीनतडी अब धारो रे।
उज्जलगिरि जइ वीनवो, चन्द्र जिहां छे प्राण आधार रे ॥ 1॥
गमने गमन ताहरुं रूपडूं, चन्दा अभीय वरषे अनन्त रे।
पर उपगारी तू भलो, चन्द्रा वलि वलि वीनवुं संत रे॥ 2॥''

इनकी अन्य कृति **''सूखड़ी''** जो 37 पद्यों की लघु रचना है जिसमें तीर्थंकर शान्तिनाथ के जामोत्सव पर बनाये गये विविध व्यंजनों, शाकों तथा सूखे मेवों का वर्णन कवि ने किया है।

भरतबाहुबलि छंद : यह रचना सं. 1670 ज्येष्ठ सुदि 6 को कुमुद चंद्र (सं. 1645-1687) द्वारा लिखी गई है। यह एक उत्कृष्ट खण्ड काव्य है।

इस खण्ड काव्य में भरत और बाहुबलि के प्रसिद्ध युद्ध की कथा है। ये दोनों ही भगवान ऋषभदेव के चक्रवर्ती पुत्र थे। चक्रवर्ती भरत को सारा भुमण्डल विजय करने के पश्चात मालूम होता है कि अभी उसके भाई बाहुबलि ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की है। सम्राट बाहुबलि को समझाने का प्रयत्न असफल होने पर और युद्ध अनिवार्य बनने के पश्चात दोनों की सेनाए रणभूमि में अपने-सामने आती है। जिसमें बाहुबलि पराजित होता है। इस असहय पराजय के कारण बाहुबलि तत्पश्चात होता हैं तब असे ज्ञात होता है कि वह जिस भूमि पर खड़ा है वह भूमि भरत की ही है। उसके मन का ये दंश तब दूर हुआ जब भरत उसके चरणों पर गिर कर स्थिति को स्पष्ट करता है। ततपश्चात उन्हें तत्काल केवल ज्ञान

प्राप्त होता है और वे मुक्ति को प्राप्त होते हैं। पूरा का पूरा खण्ड काव्य मनोहर, ललित शब्दों से संकलित है। पूरे काव्य में रसयोजना दृष्टिगोचर होती है मुख्यत्वे शांत रास एवं वीररस बड़ा ही सुंदर प्रदर्शित हुआ है। इस खण्ड-काव्य की भाषा में सजीवता है एवं रसानुकूलता है।

''चाल्या भल्ला आखडे बलीया, सुर नर किन्नर जोवा मलीया
काछया काछ कशी कड़ तांणी, बोले बांगड बोली वाणी''

भरतबाहुबलि छन्द की एक हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर के गुटका नं. 5 में पृ.40 से 48 पर लिखित है।

''आदिनाथ (ऋषभ) विवाहलो'' भी कवि की एक महत्व पूर्ण कृति है। 11 ''ढालों वाली इस छोटे खण्डकाव्य की रचना सं. 1678 में धोधानगर में हुई थी। इस 'विवाहलो'' में ऋषभदेव की माँ के 16 स्वप्न देखने से लेकर ऋषभ के विवाह तक का सुन्दर वर्णन है। अन्तिम ढाल में, जिस में विवाहला शब्द सार्थक होता है, उनके वैराग्य धारण करने और मोक्ष प्राप्ति का उल्लेख है।

''दिन दिन रूपे दीपतो, कांइ बीजतणों जिमचंद रे ।
सुर बालक साथे, रमे, सहु सज्जन मनि आणंद रे॥
सुन्दर वचन सोहामणां, बोले बाठुअडो बाल रे॥
रिम झिम बाजे घूघरी, पगे चाले बाल मराल रे॥''

इनके अतिरिक्त 21 पद्य वाले **''वणजारा गीत''** में कवि ने संसार का सुंदर चित्र उद्घाटित किया है। **''शीलगीत''** एक चरित्र प्रधान एवं जीवन में संयम का महत्व प्रदर्शित करनेवाले कृति है इसमें कवि ने बताया है कि मानव को किसी भी दिशा में आगे बढ़ने के लिए चरित्र बल की खास आवश्यकता है। ''साधु संतों एवं संयमियों को तो स्त्रियोंसे दूर ही रहना चाहिए'' आदि का अच्छा उपदेश दिया है।

भक्तिरस से पुष्ट कुमुदचंद्र की विनियों का संकलन मन्दिर ठोलियान, जयपुर के गुटका नं. 131 में प्राप्त है। इस गुट के का लेखन काल सं.1779 दिया गया है।

कवि का पद साहित्य उच्चकोटि का है। भाषा शैली एवं भाव सभी दृष्टियों से कवि

के पद बड़े सुन्दर है। कवि के इन पदों की सीधी-सादी भाषा में आध्यात्म, भक्ति, शृंगार एवं विरह की उत्तम भावाभिव्यक्ति है। एक पद में प्रभू को मीठा उपालंभ देता हुआ भक्त कवि कहता है-

''प्रभू मेरे तुमकुं एसी न चाहिए ।
सघन विधन घेरत सेवक कूं मौन धरी क्यों रहिए ॥ 1॥ आदि''

एक अन्य पद में नेमिनाथ के प्रति राजमती की सच्ची विरह पुकार है-

''सखी री अबत तो रह्यो नहि जात ।
प्राणनाथ कौ प्रीत न विसरत, छण छण छीजत जात ॥ 1॥''

शलिभद्र रास जिनराजसूरि (सं.1647-99) द्वारा लिखी गई उल्लेखनीय साहित्य कृति है। यह कृति काव्य महोदधि भौतिक में प्रकाशित है। इसमें श्रेणिका राजा के समय में हुए शालिभद्र और धन्ना सेठ की ऋद्धि-सिद्धि और वैराग्यपूर्ण सुन्दर कथा गुंफित है, जो जैन साहित्य में अत्याधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। इस कथा में सुपात्र दान की महिमा बताई गई है।

''गज सुकुमार रास'' क्षमा धर्म की महिमा पर लिखी कृति है। इसमें बताया गया है कि जाति स्मरण ज्ञान होने से और अपने पूर्वभाव की स्मृति आने से गजकुमार राज ऋद्धि का त्याग कर दीक्षा अंगीकार कर लेता है, और महामुनि बन जाता है।

''लवकुश छप्पय '' यह कृति भट्टारक महीचन्द्र (सं.1651 के पश्चात) ने लिखी है। यह छप्पय छन्द के 70 पद्यों में रचित कवि की बड़ी कृति है। इसकी एक प्रति श्री दिगम्बर जैन मन्दिर डूंगरपुर में गुटका नं. 355 में निबन्ध है। इसे एक सुन्दर खण्डकाव्य कह सकते हैं। इसकी कथा का आधार लव-कुश की जीवन गाथा है। राम के लंका विजय और अयोध्या आगमन के पश्चात् के काथासूत्र को लेकर साहित्यिक वर्णन इस काव्य में हुआ है।

इस कृति में शांतरस के निर्वाह के साथ वीर रस भी पाया जाता है। वीर रस प्रधान डींगल शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है।-

''रण मिसाण वजाय सकल सैन्या तव मेली।
चढ़यो दिवाजे करि कटक कवि दश दिश भेली।

हस्ति तुरंग मसूर भार करि शेषज शंको।
खडगादिक हथियार देखि रवि शशि पण कांप्यो॥
पृथ्वी आंदोलित थई छत्र चमर रवि छादयो ।
पृथु राजाने चरे कहयो, ल्याघ्र राम तवे आवयो ॥ 15॥''

''रूंध्या के असवार हणी गय वरनि घंटा।
रथकी धाच कूचर हणी वली हयनी थरा ॥
लव अंकुश युद्ध देख दशों दिशि नाठा जावे ।
पृथुराजा बहु बढ़े लोहि पण जुगति न पावे ॥
वज्र संघ नृप देखतो बल साथे भागो यदा ।
कुल सील हीन केतो जिते जिते पृथुरा पगे पडयो तदा ॥ 20॥''

इस के अतिरिक्त कवि की अन्य कृतियाँ इस प्रकार हैं –

आधारगीत यह एक मुक्तक काव्य है। इसमें कुल 28 पद्य हैं। इसकी एक प्रति सादरापुर में पार्श्वनाथ चैत्यालय के सरस्वती भवन में धर्मभूषण के शिष्य ब्रह्म बाधजी की लिखी हुई सुरक्षित है।[235] एक सुन्दर भक्तिकाव्य है।

अम्बिका कथा देवी अम्बिका की भक्ति से संबधित यह कृति है। इसकी एक प्रति लखनऊ के श्री विजयसेन और पति रामपालजी के पास है। इसकी रचना सं. 1651 में हुई थी।

''पाण्डव-पुराण'' इसकी रचना सं.1654 में नौधक में हुई थी।[236] इसकी एक प्रति जयपुर के तेरहपन्थी मंदिर के संग्रह में सुरक्षित है।

अंजना सुरी रास : [237] यह कृति रायपुर में सं. 1661 में माहानन्दगणि (सं.1661 आसपास) द्वारा रची गई थी। यह एक सुन्दर चरित्र कथा है जिस में हुनमान की माँ अंजना का चरित्र वर्णित है। इस कथानक के आधार पर अनेक जैन-गूर्जर कवियों ने काव्य रचनाएँ की है। हुनमान जननी अंजना देवी पर अनेक विपत्तियाँ आती हैं। पर वे भगवान जितेन्द्र की भक्ति से विचलित नहीं होती इनका सम्पूर्ण जीवन भक्तिमय था। अंजना के चरित्र की सब से बड़ी विशेषता यह भी थी कि उसने गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का भी विधिवत पालन किया

साथी ही वीतरागी प्रभु से प्रेम कर अलोक का भी समान रुप से निर्वाह किया । इनकी भाषा राजस्थानी गुजराती मिश्रित हिन्दी है। विरह के एक पद द्वारा इसकी प्रतीति कराई जा सकती है –

''मधुकर करइं गुंजारव मार विकार बंहति ।
कोयल करइं पट हूकता टूकड़ा मेलवा कंत ॥
मयलयाचल की चलकिउ पुलकिउ पबन प्रचंड।
मदन महानृप पासइ विरहीन सिर दंड ॥ 55॥''

''आनन्दघन बहोतरी'' इसकी रचना 18 वीं शती के आनन्दधन ने की थी। इस रचना के पदों में भक्ति, वैराग्य, उपेश, ज्ञान, योग, प्रेम, इश्वर उलट बासियां, आध्यात्मिक रूपक, रहस्य दर्शन आदि की अपूर्व सुसंयोजित अभिव्यक्ति हुई है । परमतत्व से लो लगाने की बात को कविने किस सहजता से व्यक्त किया है, देखिए -

ऐसे जिन चरणे चित लाउं रे माना,
ऐसे अरिंहत के गुण गाउ रे माना ॥ ऐसे ... ॥
उदर भरन के कारण रे, गोंआ वन में जाय।
चारो चरे चिहुँ दिश फिरे, वाकी सुरत वाछरुआ मांहेरे॥ ऐसे॥
सति पाँच साहेलियां रे हिल मिल पाणी जाय।
ताली दिए खड खड हंसे रे, वाकी सुरति गगरुआ मांहे॥ ऐसे॥

नन्द बहोतरी–विरोचन मेहता वार्त इसकी रचना जिनहर्ष (सं.1713-1738) ने सवंत 1714 ने की थी इस रचना के अंतर्गत जिनहर्ष ने राजा नन्द तथा मंत्री विरोचन की रसप्रद कथा दी है। इस दूहाबंध वार्ता मे कुल 72 दोहै हैं। इस कृति की भाषा राजस्थानी हिन्दी है।

''सूरवीर आरण अटल, अनियण कंद निकंद ।
राजत है राजा, नन्दराई आनन्द ॥ 2॥''

इस के अतिरिक्त जिनहर्ष की एक अन्य कृति

''जसराज बावनी'' जिसकी रचना संवत 1788 फाल्गुन वदी 7 गुरूवार के दिन हुई थी। इस ग्रंथ में 57 सवैए हैं। इस कृति का आरंभ ही निर्गुणियों की भाँति किया है –

ऊंकार अपार जात आधार, सवै नर नारी संसार जपे है।
बावन अक्षर महिं धुरक्षर, ज्योति प्रधोतन कोरि तपे है।
सिद्धि निरंजन भेख अलेख सरूप ने रूप जोगेन्द्र थपे है।
ऐसो महातस है ऊंकार को, पाप जसा जाके नाम खपे है॥1॥

''क्षौर सुसीम मुंडावत है कोइ लम्ब जठा सिर केइ रहावै के द्वारा कवि बाह्यडम्बर का विरोध करता है और अन्त है में ग्यान बिना शिव पंथ न पातै कहकर ज्ञान की प्रतिष्ठा करता है।''

इसके अतिरिक्त संगीतात्मक गेय पदों में रचित कवि की तीसरी रसिद्ध रचना है- **चौवीसी** इसमें तीर्थंकरों की स्तुति गाई गई है। संवत् 1713 में रचित 'उपदेश छतीसी' [238] में 36 पध संकलित हैं। अन्य भक्ति काव्यों की भाँति ही इसमे भी संसार की माया मोह आदि को छोड़ कर भगवान (जितेन्द्र) के चरण कमलों में समर्पित होने का उपदेश दिया गया है। तथा संवत 1730 अषाढ-शुक्ल 9 को रचित **दोहा मातृका बावनी** जीवनोपयोगी सद्धर्म की अभिव्यकित हुई है।

भक्ताभर स्त्रोत राग माला काव्य इस कृति के रचनाकार देवीविजय (सं. 1713-60) है। जिन्होंने विभिन्न रागों में सं. 1730 पौस सुदी13 के दिन इस की रचना की थी। [239] इसमें 44 पद्य हैं।

''**चौबीसी**'' यह कृति लक्ष्मीवल्लभ (18 वीं शती का दूसरापाद) द्वारा रचित है। इस कृति के अंतर्गत चौबीस तीर्थंकरों की भक्ति से सम्बधित स्तवन संग्रहीत है। इसकी कुल पद्य संख्या 25 है। पदों की रचना विभिन्न राग-रागरागिनियों में की गई है। यह कवि का उत्तम मुक्तक काव्य है।

''किते दिन प्रभु समरन बिनु ए।
परनिंदा मैं परी रसना विषया रस मन मोए॥1॥

मच्छर मया पंक में अपने, दुरलभ ज्ञानसु गोए।
काल अनादि असंख्य निरंतर मोह नींद मै सोए॥2॥''

इस कृति में भक्त हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से कवि की यह कृति उत्तम काव्य कृतियों में स्थान पाने योग्य है।

''माहावीर गौतम स्वामी छंद'' में कुल मिलाकर 96 पद्य हैं। सभी पद भगवान महावीर और उनके प्रमुख गणधर गौतम की भक्ति से सम्बन्धित हैं। इसकी रचना संवत 1741 से पूर्व ही हो गई थी।

'दोहाबावनी' की दो प्रतियाँ अभय जैन पुस्तकालय बीकानेर में विद्यमान है। पहली प्रति हीरानन्द मुनि की संवत 1741 पौस सुदी 1 की लिखी हुई है तथा दूसरी भुवनविशालगणि के शिष्य फहरचन्द की संवत 1821 अश्विन वदी 7 की लिखी हुई है।[240] इसमें कुल 58 दोहे संग्रहीत है।

''दोहा बावनी करी, आतम परहित काज।
पढ़त गुणत वाचत लिखत, नर होवत कविराज॥58॥''

कालज्ञान प्रबंध (पद्यानुवाद) कवि का वैद्यक ग्रंथ है। इसकी रचना सं. 1741 भाद्रपद शुक्ल 15 गुरूवार को हुई।[241] इसके अंतर्गत कुल 178 पद्य संग्रहीत हैं। भावना विलास इस रचना में जैनधर्म की बारह भावनाओं का बड़ा ही आकर्षक वर्णन हुआ है। इसमें 52 पद्य हैं। इसमें सवैया छन्द का प्रयोग हुआ है, रचना अत्याधिक रोचक बन पड़ी है। इसकी रचना संवत् 1727 पौष वदी 10 को हुई थी।[242]

अध्यात्म फाग की रचना सं. 1721 के आसपास हुई थी।[243] यह एक सुन्दर रूपक काव्य है। जब शरीर रूपी वृन्दावन-कुन्ज में ज्ञान-बसंत प्रगट होता है तब बुद्धि रूपी गोपी के साथ पंच गोपों का (इन्द्रियों का) मिलन होता है। सुमति राधा के साथ आतम-हरि होली खेलते हैं। यह प्रसंग बड़ा ही रमणीय है। यहाँ एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''आतम हरि होरी खेलिए हो, अहो मेरे ललनां
सुमति राधाज के संगि।
सुस सुरतरु की मंजरी हो, लई मनु राजा राम,
अब कउ फाग अति प्रेम कउ हो, सफल कीजे मलि स्याम । आतम.2

इसके अतिरिक्त लक्ष्मीवल्लभ की **''नवतत्व चौपाई''** (1747 वैशख वदी 13 गुरुवार), 52 पद्य वाली **''उपदेश बावनी''**, **''चेतन बत्तीसी''** (सं. 1739) **''दैशान्तरी छन्द''** विशेष उल्लेखनीय हैं।

विनय विलास : इसकी रचना विनयविजय (सं.1739) ने की थी। यह कृति विशिष्ट आत्मानुभूति सम्पन्न विद्वान की है। संतोचित वाणी में कवि जीव की मूढ़ता का यथार्थदर्शन करना हुआ कहता है –

"मेरी मेरी करत बाउरे, फिरे जीउ अकुलाय ।
पलक एक में बहुरि ने देखे, जल–बुंद की न्याय ।
प्यारे काहे कूं ललचाय ॥
कोटि बिकल्प व्याधि की वेदन, लही शुद्ध लपटाय ।
ज्ञान–कुसुम की सेज न पाई, रहे लघाय अघाय।
प्यारे काहे कूं ललचाय॥"

द्रव्य प्रकाश : इस ग्रंथ की रचना श्रीमद् देवचन्द्र (सं. 1746 -1812) ने सं. 1767 पौष वदी 13 को बीकानेर में की थी।[244] यह ब्रजभाषा की रचना है। षट द्रव्य निरुपणार्थ सवैया दोहों में रचित यह रचना आध्यात्म रसिक मिठ्ठमल भणसाली आदि के लिए विनिर्मित हुई। इसमें आत्मा परमात्मा का स्वरूप तथा जीव का स्वरूप समझाता कवि छः द्रव्यों के स्वरूप की विस्तृत विवेचना करता है। द्रव्य गुण पर्याय, जीव पुद्गल कथन, अष्टकर्म विवरण, उसके निवारण के उपाय, नवतत्व का स्वरूप, स्वादवाद स्वरूप आदि अनेक महत्व के प्रश्नों का आध्यात्मिक द्दष्टि से तथा साथ ही व्यवहारिक द्दष्टि से निरूपण हुआ ।

ब्रजभाषा के माधुर्य में गहन ज्ञान की सुवास भर कवि ने अपनी आत्मसुवास सर्वत्र बिखेर दी है। इसकी आरंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

"आज अनादि अक्षय गुणी, नित्य चेतनावान्।
प्रणमुं परमानन्द मय शिव सरूप भगवान् ॥ 1॥
जाके निरखत संते थिरतासु भाव धरै,
वरे निज मोक्ष पद हरे भव ताव को; आदि ।"

इसके अतिरिक्त **"साधु समस्या दवादस दोधक"** [245] 12 दोहों की कवि श्रीमद् देवचन्द्र की एक छोटी रचना है, जिसमें 'मुनिवर चांरित लीन' रहते का सरल उपदेश दिया गया है। कवि का मानना है कि चक्रवर्ती से भी अधिक सुख अन्तर्मुखी हो आत्म तत्व का सच्चा ज्ञान और उसकी अनुभूति पाने में है।

''आत्महित शिक्षा'' भी एक छोटी रचना है। इसमें आत्मा को स्थिर कर आध्यात्म ज्ञान के अक्षय खजाने को पाने तथा संसार की मोह दशा से चेतने का सरल उपदेश है।

''गुणमाला चोपाई'' खेमचन्द्र (सं.1751 के आसपास) द्वारा रचित कृति है। इसमें गोरखपुर के राजा गज-सिंह और गुणमाल की कथा वर्णित है। आर्य मर्यादा की उत्तम शिक्षा एवं पतिव्रता का आदर्श इस रचना में कवि ने दिखाया है। कथा सरस है और तत्कालीन समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। ''गुणमाला चोपाई'' में पुणमाला को उसकी माता आर्य मर्यादा की सीख देती हुई कहती है –

''सीषावणि कुंवरी प्रतै, दीयै रंभा मात।
बेटी तूं पर पुरुष सुं, मत करजे बात॥1॥
भगति करे भरतार की, संग उत्तम सहजे।
बड़ा रा म्हौ बोलै रषे, अति विनय बहजे॥2॥''

''मदन युद्ध'' हेम कवि (सं. 1776) की रचना है। इसके अतर्गत मदन और रति का संवाद है। जैनाचार्य श्री कल्याणसागर सूरि को महाव्रतों से न डिगाने के लिए रति कामदेव से प्रार्थना करती है।

कामदेव रति की प्रार्थना अस्वीकार कर शस्त्र से सज्जित हो संयमशील आचार्य को साधनाच्युत करने के लिए प्रयाण करता है। परन्तु तपस्वी मुनि के चरणों में गिरकर क्षमा याचना करता है। यहाँ पर एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''ओर उपाव को कीजीइं ज्यों यह माने मोहें।
चूप रहो अजहुं लज्जा नहीं कहा कंहू पीय तोहें॥89॥
एक हरि को अधिक दुख कहें बेंन जु मेंन।
दाधे उपर लोंन को खरो लगावत ऐं न॥90॥''

इस काव्य की रचना सं. 1776 में हुई थी।[246]

सीता आलोयणा : कवि कुशल (सं.1786-89) की महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कृति है। इसमें कवि ने 13 पद्यों में सीता के वनवास समय में की गई आत्म विचारणा पर अति सूक्ष्म एवं सजीव वर्णन किया है।

''सती न सीता सारखी, रति न राम समान
जती न जम्बू सारखो, गती न मुगत सुथाँन।
सीताजी कुं रामजी, जब दीनो वनवास,
तब पूरव कृत करमकुं, याद करे अरदास।''

''ब्रह्म बावनी'' निहालचन्द्र (स. 1800 के आसपास) की हिन्दी रचनाओं में प्रसिद्ध एवं उत्तम रचना है। इसमें कुल 52 पद्य हैं। इसमें निराकार और अद्दश्य सिद्ध भगवान की उपासना जैन परम्परानुसार की गई है। निर्गुणोपासक सन्तों की सी मधुरता भावभिसिक्तता एवं आकर्षण इस कृति में सहज ही देखा जा सकता है। यह रचना कवि के आध्यात्म और वैराग्यपरक विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। ओंकार मन्त्र की महिमा बताता हुआ कवि कहता है-

''सिद्धन कौ सिद्धि, ऋद्धि सन्तन कौ महिमा महन्तन कौ देव दिन माहीं है,
जोगी कौ जुगति हूं मुकति देव मुनिन कूं, भोगी कूं भुगति गति मतिउन पांही है।''

कवि की अन्य हिन्दी कृति बंगाल देश की गज़ल में बंगाल के मुर्शिदाबाद नगर का वर्णन है। इस कृति की रचना संवत 1782 से 1795 के बीच अनुमानित है।[247] इसमें कुल 65 पद्य हैं।

उपर्युक्त सभी महत्वपूर्ण रचना के अतिरिक्त यशोविजयजी उपाध्याय की ''दिक्पट चौरासी बोल'' महाराव लखपतिसिंह के द्वारा रचे गए पाँच ग्रंथों का यहाँ संक्षिप्त में परिचय दिया गया है।

1. सुरतरंगिणी : महाराव लखपतिसिंह की रचनाओं में काल क्रमानुसार **''सुरतरंगिणी''** उनकी प्रथम रचना है। इसका रचनाकाल अंतः साक्ष्य के आधार पर संवत् 1795 माना गया है। इस रचना की दो प्रतियाँ प्राप्त होती है। कच्छ के राजकीय हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह, भुज की प्रति का लिपिकाल संवत् 1888 है और राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की प्रति का संवत् 1914। यह संगीत शास्त्र संबंधी विशिष्ट ग्रंथ है जिसकी रचना पंडित शाड़र्गदेव कृत ''संगीत-रत्नाकर के अनुसार की गयी है।'' संगीत-रत्नाकर का रचना काल 13वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।[248] संगीत रत्नाकर संस्कृत में लिखा हुआ अत्याधिक प्रसिद्ध संगीत-शास्त्रीय ग्रंथ है। प्रसिद्ध संगीत-शास्त्री पंडित विष्णु नारायण भातखंड़ेजी के शब्दों में

''संगीत रत्नाकर'' हमारे संगीत की ऐतिहासिक शृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है।[249]

''सुरतरंगिनी'' की विषय वस्तु को तीन अध्यायों में रखा गया है। 1) सुरध्याय जिसमें 592 छन्द हैं, 2) रागाध्याय जिसके अंतर्गत 732 छन्द हैं तथा 3) परकीन अध्याय जो 54 पद्यों में समाप्त होता है । ''सुरतरंगिनी'' विशिष्ट प्रकार का संगीत शास्त्र विषयक ग्रंथ होते हुए भी इसमें सुंदर काव्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं इसलिये शुद्ध काव्य की दृष्टि से भी लखपतिसिंह की कृतियों में उसका विशिष्ट स्थान है। शास्त्र-निरुपण में लखपतिसिंह ने परंपरा का अन्धानुकरण अथवा अनुवाद मात्र नहीं किया, अपितु उन्होंने संगीत विवेचन में मनौवैज्ञानिक एवं काव्यात्म दृष्टि अपनाई है। परिणामस्वरूप वे बड़ी सुंदर मुक्तक काव्य रचना कर पाये हैं। उसके दूसरे अध्याय (रागध्याय) में लखपतिसिंह के मुक्तक काव्य सर्जन के अच्छे उदाहरण मिलते हैं।

2) ''मृदंग-मोहरा'' : गोविंद गिल्लाभाई ने महाराव लखपति की इस रचना का उल्लेख किया है। उनके मतानुसार इसकी रचना महाराव लखपतिसिंह ने किसी हिन्दुस्तानी नायक और हिन्दी गवैये की सहायता से की है।

मृदंग मोहरा पूर्ण रूप से नहीं मिलती इसका कुछ अंश कच्छ के राजकीय संग्रह में देखा गया है। इसका विषय भी संगीत शास्त्र है। मृदंग के बोलों के पन्नों पर कहीं भी लेखक ने अपना और कृति का नाम नहीं लिखा है। इस कृति के बिखरे हुए पन्नों को अनायस्क ही ''मृदंग मोहरा'' नाम दे दिया गया। गोविन्द गिल्लाभाई ने कवि की इस नाम की कृति का उल्लेख किया है। (हो सकता है उन्होंने इसका पूर्ण या अपूर्ण अंश देखा भी हो) इस तथ्य से यह प्रतिष्ठ होता है कि परवर्ती विद्वानों ने इन्हीं कुछ पन्नों को देखकर ''मृदंग मोहरा'' नाम दे दिया होगा।

3) रसतरंग (लखपति शृंगार) : यह महाराव लखपतिसिंह की तृतीय रचना है जो ''लखपति शृंगार'' के नाम से प्रसिद्ध है। ग्रंथ के अंतः साक्ष्य के आधार पर इसका रचनाकाल सिद्ध नहीं होता । केवल प्रतिलिपिकार कुँवर कुशल ने सं. 1805 की विजयादशमी को प्रतिलिपि की समाप्ति का उल्लेख किया है। इसलिये ये सहज ही अनुमादित होता है कि लखपतिसिंह ने संवत 1805 के पूर्व और अपनी प्रथम रचना (सं. 1795) के बाद किसी वर्ष इसकी रचना होगी। प्रतिलिपि की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय तथ्य है कि प्रतिलिपिकार

स्वयं विद्वान आचार्य था और यह कार्य उसने लखपतिसिंह के जीवन काल में ही पूर्ण किया था।

हेमचंन्द्राचार्य ज्ञान मंदिर, पाटण में उपलब्ध दो प्रतियाँ सं.1902 में लिपिबद्ध हुई हैं तथा दोनों क्रमशः 65 तथा 33 पात्रों में समाप्त होती हैं। तीसरी प्रति इन दोनों से काफी पुरानी ही नहीं, किंतु कवि के ही जीवनकाल में लिखी गई होने के कारण अधिक विश्वसनीय कही जा सकती है। यह तीसरी प्रति कच्छ के राजकीय हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह भुज से प्राप्त हुई है। उसका लिपि काल सं. 1805 है। तथा लखपतिसिंह के आश्रित कवि कुँअर कुशल द्वारा लिपिकृत है। उसके 114 पत्र हैं जिनमें 437 तथा एक प्रक्षिप्त छंद मिलाकर 468 छंद हैं जिनमें से 151 दोहे, 2 कविता छप्पय, 1 कवित्त, 263 सवैया, 4त्रिभंगी और 17 हरिपद है।

रचना के आरम्भ में नौ रसों में रसिकों की रुचि के अधिक अनुकूल शृंगार को तथा शृंगार रस के आलंबन के रूप में नायिका को अधिक महत्व देते हुए लखपतिसिंह ग्रंथ के वर्ण्य-विषय की सीमा के प्रति संकेत कर देते हैं। सर्वप्रथम स्वकीया, परकीया और सामान्या के तीन भेदों को गिनाकर कवि लक्षण-उदाहरण पद्धति से प्रत्येक का सविस्तार परिचय देते हैं। इसके आगे इन तीनों के अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना, नवोढ़ा, विश्रब्धानवोढ़ा, धीरा और अधीरा तथा ज्येष्ठा, कनिष्ठा आदि भेद गिनाये गये हैं और सभी भेद-उपभेदों को लक्षण-उदाहरण शैली में प्रस्तुत किया गया है।

4) लखपति भक्ति विलास : महाराव लखपतिसिंह की चतुर्थ कृति **लखपति भक्ति विलास** एक खंड काव्य है। इसकी मात्र एक ही प्रति उपलब्ध है जो कि बड़ौदा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह में सुरक्षित है। इसका रचनाकाल संवत 1816 वि. है और इसी काल में महाराव लखपतिसिंह के आश्रित कवि कुँवर कुशल द्वारा लिपिबद्ध भी हुई।

''लखपति भक्ति विलास'' में भक्त प्रल्हाद की श्रद्धायुक्त एकनिष्ठ भक्ति एवं तत्वज्ञान का तथा नृसिंह अवतार का वर्णन किया गया है जिसमें भौतिक जगत की मोहमाया के प्रति तिरस्कार, ग्लानि एवं वैराग्य भावना की तत्वज्ञान के प्रति तिरस्कार, ग्लानि एवं वैराग्य भावना की तत्वज्ञान पूर्ण मार्मिक उक्तियाँ भी मिलती है। 665 छंदों में संपूर्ण होनेवाले इस खण्ड काव्य का प्रतिपाद्य भगवदभक्ति है।

5) ''सदाशिव-ब्याह '' : यह महारावलखपतिसिंह की पाँचवी और अंतिम रचना है। यह एक खंड काव्य है। श्री अगरचन्द नाहटा ने सन् 1947 में इस रचना की एक संपूर्ण प्रतिलिपि का परचिय दिया था।[250] यह प्रतिलिपि संवत 1857 की होने से मूल कृति के रचनाकाल के चालीस वर्ष पश्चात् लिखी गई है। यह मूल रचना के निकटतम समय की होने के कारण प्रामाणिक कही जा सकती है।

महाराव लखपिसिंह रचित यह दूसरा खण्डकाव्य है। यह शिव और पार्वती के विवाह की प्रसिद्ध पौराणिक कथा का आधार लेकर लिखा गया खण्डकाव्य है। कवि ने इसकी रचना रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति शृंगारिकता के अनुरूप की है। उसमें शिव-कथा सम्बन्धी पुराण-प्रसिद्ध गंभीर प्रसंगों के स्थान पर शृंगार के अनुरूप ऐसे व्यंगात्मक और विनोदपूर्ण प्रसंगों एवं पात्रों की सृष्टि की गई है। कुछ गंभीर वातावरण से प्रारम्भ होनेवाला यह खण्डकाव्य विवाह के मंगलमय प्रसंग में पर्यवसित होता है।

उपर्युक्त पाँच प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त लखपति की तीन फुटकर सवैये भी उपलब्ध खण्डकाव्य ''सदाशिव विवाह'' में लखपतिसिंह अपेक्षाकृत अधिक सफल हुए हैं। इस काव्य को समकालीन प्रवृत्ति के अनुसार प्रस्तुत करने में चरित्रसृष्टि, मार्मिक प्रसंगों की योजना वस्तुसंगठन तथा उदेश्य सभी में उनकी मौलिकता का परिचय मिलता है।

उपलब्ध तीनों सवैयों की प्रतिलिपियों के विषय ग्लानिपूर्ण आत्मदर्शन, निर्वेद और अवसाद की तीव्र अनुभूति और शिवभक्ति है।

संदर्भ-सूची

1. जैन गूर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन पृ. 33
2. महावीर जयन्ती स्मारिका-राजस्थान जैन सभा, जयपुर डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन का लेख,पृ.13
3. Dr. S. Radhakrishna, Indian Philosoy Vol.I, Page - 287
4. भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग-1 - जयचंद विद्यालंकार पृ.343
5. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास पृ. 142
6. विश्वधर्म दर्शन 195 पृ. 124
7. जैन सिद्धांत भास्कर प्रो. ज्योतिप्रसाद जैन का लेख, पृ. 48 भाग 20, किरण 1 जून 1953
8. मध्यकालीन गुजराती साहित्य, मुंशी पृ. 72
9. गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन, पृ. 54
10. आदिकाल की प्रामाणिक रचनाएँ (प्रथम संस्कार पृ. 256)
11. राजस्थान के जैन संत, प्रस्तावना पृ. 1
12. वही पृ. 23
13. A History of Gujart Vol
14. गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन पृ.54
15. जैन गूर्जर कवियों भाग 1 पृ. 254
16. जैन गूर्जर कवियों-3, खंड 1, पृ. 755
17. आनंद काव्य महोदधि, मौक्तिक -6, पृ.21
18. आनंद काव्य महोदधि मौक्तिक -6, नल दमयंती रास, पृ. 206
19. पाण्डव पुराण प्रशस्ति, अन्त भाग, श्लोक 167-171 जैन ग्रंथ प्रशस्ति, अन्त भाग, श्लोक 167-171
20. भट्टारक पट्टालि पृ. 158
21. पं. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास पृ. 393
22. श्री कस्तुर चंद कसलीवाल संपा. हिन्दी पदसंग्रह पृ. 298-300
23. डॉ. कस्तुर चंद कासलीवाल, राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 153
24. भट्टारक सम्प्रदाय, जीवराज ग्रंथमाला शौलापुर पृ. 200
25. हिन्दी पद संग्रह, महावीर, ग्रंथमाला, जयपुर डॉ. कस्तुरचंद कासलीवाल पृ. 2
26. राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व डॉ. कस्तुरचंद कासलीवाल पृ. 192
27. वही. पृ. 191

28. इसकी एक प्रति महावीर भवन जयपुर के रजिस्टर संख्या 7 पत्र सं. 75 पर लिखी हुई है कवि की अन्य कृतियाँ भी रजिस्टर संख्या 8 और 9 में निबद्ध है।
29. जैन गूर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन
30. विक्रम प्रबंध रास, राजस्थान के शास्त्र भण्डारां की ग्रंथ सूची भाषा 3 पृ. 296
31. जैन गूर्जर कवियों भाग-3,खंड 1, पृ. 615-19 तथा भाग-1, पृ. 168-70
32. जैन गूर्जर कवियों, भाग-4 खंड 1, पृ. 1000
33. वही. भाग-4 खंड 1, पृ.1000
34. प्राचीन फागु संग्रह, संपा, डॉ. भोगीलाल सांडेसर पृ. 32
35. हंसराज वांछो, देपाल, माल, हेमनी जैन गूर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन
36. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास नाथूराम प्रेमी पृ.45
37. जैन गूर्जर कवियों भाग-3 खंड-1, पृ.807-816, भाग-1, पृ.304-10
38. परंपरा, राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल ले. अगरचंद नाहटा पृ.1-72
39. जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह
40. प्रशस्ति संग्रह दि. जैन अतिशय क्षेत्र महावीरजी जयपुर. डॉ. कस्तुरचंद कासलीवाल पृ. 11
41. वीरवाणी वर्ष, पृ. 231
42. जैन गूर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन ।
43. प्राचीन फागु संग्रह, सं.पा.डॉ. भोगीलाल सांडेसरा पृ.33 प्रका. पृ. 150-71
44. जैन गूर्जर कवियों भाग-1, पृ.245
45. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची भाग-3 पृ.117
46. माधवनल चौपाई, प्रशस्ति संग्रह, जयपुर पृ. 247-248
47. जैन गूर्जर कविओं भाग-1, पृ.213
48. जैन गूर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन
49. जैन गूर्जर कवियों भाग 1, पृ. 211 -16 तथा भाग-3 खंड-1 पृ.681-87
50. जैन गूर्जर कवियों भाग 1, पृ.219
51. वही. भाग-1, पृ. 219-221, भाग-3 खंड-1, पृ.699-700 खंड-2 पृ.1480
52. वही भाग-3, पृ. 699
53. पं. परमानन्दजी द्वारा सम्पादित प्रशस्ति संग्रह पृ. 775
54. राजस्था के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल पृ.106
55. जैन गूर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन
56. वही.
57. मुनि जिन विजय कृत शत्रुन्जय तीर्थोद्वारा की प्रस्तावना

58. जैन गूर्जर कविओं भाग-1, पृ.193-98, तथा भाग-3, खंड-1, पृ. 666-72
59. ''उपदेश रत्नमाला'' से उदघृत जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन
60. राजस्थान के जैन संत-व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ. कस्तूर चंद कासलीवाल पृ.207
61. वही. पृ.207
62. जैन गूर्जर कवियों भाग-3 खंड 1, पृ. 975
63. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग-2, पृ.142
64. परंपरा में ''राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल'' अगरचंद नाहटा पृ. 89
65. वही. पृ. 89
66. जैन गूर्जर कवियों भाग-1, पृ. 489
67. वही. भाग-2, पृ.775
68. राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ. कस्तुरचंद कासलीवाल, पृ.148
69. धर्म सागर कृत एक गीत । (जै.गू.क.हि.सा.दे.पृ)
70. राजस्थान के जैन संत -व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ. कासलीवाल, पृ.148
71. धर्म सागर कृत एक गीत जे.गू. क. हि. सा. देन.
72. राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ. कासलीवाल पृ. 151
73. देवीदास कृत समय सुंदर गीत (जे.गु.क.हि.सा.दे.पृ.)
74. सं. अगरचन्द्र नाहटा सीताराम चौपाई भूमिका पृ. 34
75. सं. 1649 में रचित अर्थरत्नावली वृत्ति सहित अष्टलक्ष्मी की प्रशस्ति, पीटरसन की चतुर्थ रिर्पोर्ट नं. 11, पृ. 64
76. वादी हर्षवर्धन द्वारा रचित 'समयसुन्दर गीत' में वर्णित (जै.गू.क.हि.सा. दे पृ.)
77. समय सुन्दर सीताराम चौपाई
78. राजसोम, महोपाध्याय समयसुन्दरजी गीतम्
79. नाथूराम प्रेमी कृत हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास पृ. 43-44

(ख) जैन गूर्जर कवियों, भाग-1, देवरागच्छराज चउपई पृ. 175

80. धर्म सागर कृत गीत (जे.गू.क.हि.सा.दे.पृ.)
81. गणेश कवि कृत गुरु स्तुति
82. राजस्थान के प्रमुख संत (पांडु लिपि) डॉ. कासलीवाल
83. जैन गूर्जर कवियों भाग-1, पृ.553
84. गुण स्थान बंध विज्ञप्ति स्तवन
85. परम्परा श्री नाहटा जी का लेख, राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल
86. जैन गूर्जर साहित्य रत्नो भाग-1, सूरत से प्रकाशित पृ. 46

87. जैन गूर्जर कवियों भाग-1, पृ.553-61 तथा भाग-3, खंड-1, पृ.1047-49
88. सत्तरमा शतकना पूर्वार्धना जैन गूर्जर कवियों (पांडु लिपि) श्री.वी.जैन चोक्सी ।
89. परंपरा राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल पृ. 83
90. जैन गूर्जर कवियों, भाग-3, खण्ड-1, पृ.803
91. नाथूराम प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास पृ. 387
92. यशोधर चरित्र की प्रशस्ति, 81वां पद्य प्रशस्ति संग्रह, प्रथम भाग, प्रस्तावना पृ. 24, पाद टिप्पणी 4 अ
93. जैन गूर्जर कवियों भाग-3, खंड-1, पृ.804
94. नेमिनाथ समवशरण विधि उदयपुर के खंडेलवाल मंदिर के शास्त्र भंडार वाली प्रति ।
95. राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ. कासलीवाल पृ. 198
96. वही पृ. 192
97. वही पृ. 192
98. भट्टारक सम्प्रदाय पत्र सं. 194
99. राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ. कासलीवाल पृ. 178-80
100. गणि महानंद, अंजानसुंदरी रास, जैन सिद्धांत भक्त आरा की हस्तलिखित प्रति ।
101. जैन सिद्धांत भक्त, आरकी हस्तलिखित प्रति ।
102. जैन गूर्जर कवियों भाग-3, खं.1 पृ. 902-5
103. वही. पृ. 905
104. आध्यात्म बावनी से उदधृत (हीरानन्द कृत)
105. जैन गूर्जर कवियों, भाग-1 पृ. 466-67
106. मो.द. देसाई जैन गूर्जर कवियों पृ. 940
107. वही.
108. वही भाग-3, खं-1, पृ. 940
109. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास पृ.47
110. मिश्रबन्धु विनोद, भाग-1, पृ.367
111. जैन गूर्जर कविओं भाग-3, खं.1,पृ. 960
112. वही. भाग-1, पृ.597-89
113. वही पृ. 497
114. वही भाग-1, पृ. 535
115. वही. पृ. 534-541 तथा भाग 3,पृ. 1029 तथा नाहटाजी का राजस्थानी साहित्य की मध्यकाल की परम्परा पृ. 80-81

116. जैन गूर्जर कवियों भाग-1, पृ.52
117. भजन संग्रह धूमांमृत, 21
118. गुजरात की हिन्दी सेवा (प्रकाशित)
119. ज्ञानी बावनी 52 वा पद।
120. जैन गूर्जर कवियों गण-3 पृ. 1624
121. श्री हरि विजयसूरि रास 9 (जै.गू.क.हि.सा. दे. पृ.)
122. जैन गूर्जर कवियों भाग-1, पृ. 409-458 तथा भाग-3 पृ.917-933
123. धीरेन्द्र वर्मा सम्पादित हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड पृ. 177 तथा 180
124. अनेकान्त वर्ष 11, किरण 4-5 जून जूलाई 1951
125. जैन गूर्जर कवियों भाग-पृ. 598
126. वही. भाग, पृ. 598
127. जैन साहित्य ने इतिहास पृ. 622
128. बुद्धिसागर के आनन्दघन पद संग्रह मे प्रकाशित ''आनन्द घन अष्टपदी''
129. आनन्दघन ना पदो, पृ.18
130. मो. मि. कापडीया, आनंदघनजी ना पदो
131. जैन गूर्जर कवियों भाग-2, पृ. 308
132. श्री ज्ञानविमल सूरि रचित प्राचीन स्तवन संग्रह भाग-1
133. जैन गूर्जर कवियों भाग-2, पृ.339
134. श्रेणिक चौपाई, जैन गूर्जर कवियों भाग-3 खं-2 पृ.1312
135. शनिश्चिर विक्रम चोपाई जैन गूर्जर कवियों, भाग 2.पृ. 341
136. जैन गूर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन पृ. 139
137. धर्म वर्धन ग्रंथावली संपादन श्री नाहटा सा. रा.रि. इ बीकानेर
138. जैन गूर्जर कावियो की हिन्दी साहित्य को देन पृ. 139
139. वही पृ. 139
140. राजस्थानी वर्ष, 2 अंक, 2 भाद्रपद 1993, श्री नाहटाजी का लेख
141. जैन गूर्जर कवियों भाग-2, पृ.124 तथा पृ.149
142. परम्परा राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल, नाहटा जी पृ.106-7
144. वही, कुछ स्तवन प्रकाशित पृ. 69-73
145. जगडु प्रबन्ध चौपाई, जैन गूर्जर कविओं भाग 1 पृ.174
146. वही. भाग-1, पृ. 174
147. जैन गूर्जर कवियों, भाग-3, खंड-2, पृ.1209

148. छंद मालिका, राजस्थान में हिन्दी के हस्त लिखित ग्रंथों की खोज, भाग 2, पृ.9
149. वही. भाग-2, पृ.9
150. वही
151. जैनगूर्जर कवियों भाग-3, खंड -2 पृ-1200 भाग-2 पृ.150-52
152. जैन गूर्जर साहित्य रत्नो, भाग-1 पृ. 147 (सुरत से प्रकाशित)
153. जैन गूर्जर कविओं खण्ड -2, भाग-3, पृ. 1170
154. जिनहर्षप ग्रंथावली पृ.26
155. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास पृ.71
156. विजयदेवसूरि जैन गूर्जर कवियों, भाग-3 खंड-2 पृ.1324
157. जैन गूर्जर कवियों भाग-2, पृ.349
158. वही. भाग-3, खंड-2 पृ.1324
159. राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल पृ.162
160. श्री पाल रचित गीत
161. राजस्थान के जैन संत-व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल पृ.161
162. रत्नहास चौपाई, जैन गूर्जर कवियों भाग-3 खंड-2, पृ.1246
163. जैन गूर्जर कवियों भाग-3, खं.2, पृ.1247
164. जैन गूर्जर साहित्य रत्नो, भाग-1 सूरत पृ.298
165. हिन्दी साहित्य द्वितीय खंड, सं. डॉ. धीरन्द्र वर्मा पृ.489
166. जैन गूर्जर कवियों, भाग-3, खं.2 पृ.1246-55
167. जैन गूर्जर कवियों भाग-2, पृ.5421
168. वही. भाग-2, पृ.542
169. जैन गूर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन
170. जैन एतिहासिक गूर्जर काव्य संचय
171. पृ.4 की पाद टिप्पणी
172. जैन स्त्रोत सन्दोह, प्रथम भाग मुनि चतुरविजय संपादित प्रस्तावना पाद टिप्पणी पृ.93
173. जैन गूर्जर साहित्य रत्नो भाग -1 सुरत, पृ.83
174. आनन्दघनना पदो, मोती गिर. कापडीया, आवृ-2 पृ.73
175. अ. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग-3, पृ. 212
    ब. श्रीपाल रास, प्रका. भमशी माणेक
176. जैन गूर्जर कवियों भाग-3 खं-2, पृ.1417
177. जैन गुर्जर साहित्य रत्नो, भाग-1 सूरत पृ.331

178. जैन गूर्जर कवियों भाग 2, पृ.473
179. श्रीमद देवचंद्र भाग-1, आध्यात्म ज्ञान मण्डल पादरा. पृ.9
180. जैन गूर्जर कविओं की हिन्दी साहित्य को देन पृ. 157
181. जैन गूर्जर कवियों भाग-2, पृ.478-496 तथा भाग-3 खं. 2, पृ-1417-20
182. श्रीमद देवचन्द्रजी विस्तृत जीवत चरित्र तथा देव विलास, म.मो. पादराकर पृ.78-81
183. जैन गूर्जर साहित्य रतनो, भाग-1, मम्बई पृ.172
184. वही
185. जैन गूर्जर कवियों भाग-2, पृ.414
186. जैन गूर्जर साहित्य रत्नो, भाग-1 सूरत, पृ 206-210
187. विनयचंद्र कृति कुसमांजलि, भवरलाल नाहटा, पृ.51
188. श्री उत्तमकुमार चरित्र चौपई, विनयचंद्र, कृति कुसुमांजलि पृ.207
189. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ पृ.182
190. किशन बावनी सं. गोविन्द गिल्लाभाई पृ.2 (सं.1915)
191. वही पृ.3
192. उपदेश बावनी, पद्य संख्या 62
193. जैन साहित्य संशोधक, खंड-2, अंक-1, पृ.25
194. मदन युद्ध अन्तिम कलश, आनंद शंकर ध्रुव स्मारक ग्रंथ पृ.225
195. आनंद शंकर ध्रुव स्मारक ग्रंथ, गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदाबाद, पृ. 243 से 255 में प्रकाशित
196. कुंअर चंद्रप्रकाशसिंह, भुज (कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला पृ. 21
197) गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन। पृ. 173
198) कुंअर चंद्रपकाशसिंह, भुज (कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला पृ. 31
199) जैन गूर्जर कवियों, भाग-2 पृ. 584
200) (क) प्रकाशित - आणंदजी कल्याणजी, चौवीसी वीशी संग्रह पृ. 497-507
(ख) जैन गूर्जर साहित्य रत्नो, भाग-1 (सुरत के प्रकाशित), पृ. 390
201) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग-4 ब्रह्म बावनी, पद 51,पृ. 88
202) जैन गूर्जर कवियों, भाग-3, खण्ड -2, पृ. 1898 तथा भाग-3 खण्ड-1 पृ.8-9
203) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग-2 पृ. 158
204) भारतीय विद्या, वर्ष-1, अंक 4, पृ. 413-29
205) कवि कनक कुशल कृत ''लखपत मंजरी नाममाला'' के हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहों में

उपलब्ध है।

206) हिस्टोरिकल सिलेक्शन्स फ्रॉम बड़ौदा स्टेट रिकार्ड्ज़ पृ.143

207) कच्छकी राजधानी भुज के बज़ार में चावडी पुलिस चौकी पर अड़ा हुआ ताम्रपत्र भी इस का साक्षी है।

208) द्रष्टव्य : भुजमां कविता शाला विषे, शीर्षक लेख, ले. कवि दलपतराम, ''बुद्धि प्रकाश'', सन् 1858, पृ. 105

209) भुज (कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला, ले. कुँवरचन्द्र प्रकाश सिंह, पृ.51

210) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 188

211) ''अब बहुत देसी परदेसी श्री महाराउ लखपति को यदि करत रहैं।
षठरित बारह मास के मांहि। अथ चैत्र मास रिति बसंत'' ॥

212) श्री भरुचय नगरे सोमरणुं श्री शांतिनाथ जिनराय रे

213) संवत् सोल अठोतर वरसि, आसो, मासि रचिउं तन हरसि। वही पद्य सं. 124

214) जैन गूर्जर कविओं भाग 1, पृ. 309

215) हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास नाथुराम प्रेमी, पृ. 44

216) जैन गूर्जर कविओं पृ. 812

217) वही. पृ: 813

218) वही पृ. 814

219) अ वही. पृ. 815
आ. डॉ. भोगिलाल सांडेसरा, संपा. प्रचीन फागु संपा. प्राचीन फागु संग्रह पृ. 31

220) जैन गूर्जर कवियों, भाग-6 खण्ड -1, पृ. 816

221) आमेर शास्त्र भंडार में सुरक्षित अेक प्रति सं. 1690

222) माधवनल चौपाई, प्रशस्ति संग्रह जयपुर, पृ.247 -248

223) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज चतुर्थ भाग, अगरचंद नाहटा संपादित, साहित्य संस्थान, उदयपुर, 1954 ई. पृ. 105

224) राजस्थान के जैन संत-व्यक्तित्व एवं कृतित्वि, डो. कस्तूरचन्द कासलीवाल पृ. 107

225) वही, पृ: 266-270

226) वही, पृ. 109

227) उदयपुर के अग्रवाल दि. जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार वाली प्रति से उदधृत

228) राजस्थान के जैन संत-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.112

229) मगन छत्तीसी, पद्य -37

230) गुणबावनी, अन्तिम प्रशस्ति, पद्य 46, नाहटा संग्रह से प्राप्त

231) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग 4, अगरचन्द नाहटा उदयपुर

232) परम्परा - राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल ले. अगरचन्द नाहटा, पृ. 89
233) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग-2 पृ. 35-36
234) राजस्थान के जैन संत-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. कस्तुरचंद कासलीवाल, पृ. 148
235) जैन गूर्जर कवियों, भाग-3 खण्ड 1, पृ. 805
236) प्रशस्ति संग्रह, प्रथम भाग, दिल्ली प्रस्तावना, पृ.14 पादटिप्पणी-3
237) जैन सिद्धान्त, भवन, आरा में इसकी हस्तलिखि प्रति सुरक्षित है। इसमें कुल 22 पन्ने है।
238) राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज पृ.101
239) जैन गूर्जर कवियों भाग-3 खंड 2, पृ.1324
240) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग-4 पृ.86
241) जैन गूर्जर कवियों भाग-3 खंड 2, पृ. 1251-52
242) वही भाग-3, खंड 2, पृ. 1248 अ,ब, राजस्थान में हिन्दी की हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग-4 पृ. 152
243) देखिए-प्राचीन फागु संग्रह, संपा. डॉ. सांडेसरा पृ.43
244) ''द्रेव्य प्रकाश'', श्रीमद देवचन्द्र भाग-2, आध्यात्म प्रसारक मंडल, बम्बई
245) प्रकाशित, पंच भावनादि, सजझाय सार्थ, संपा. अगरचन्द नाहटा, पृ. 98-99
246) आचार्य आन्द शंकर ध्रुव स्मृति ग्रंथ, पं. अम्बालाल प्रेमचन्द शाह का लेख, पृ. 238
247) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग-2, पृ.152
248) भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 207, ले. उमेश जोशी, प्रथम संस्करण, 1957, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत मानसरोवर प्रकाशन महल, फीरोजाबाद द्वारा प्रकाशित
249) वही, पृ. 207 से उद्धृत
250) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज द्वितीय भाग, पृ. 216-17, ले. श्री अगरचन्द नाहटा, सन् 1947, प्रकाशकः उदयपुर विद्यापीठ सरस्वती मंदिर,